बाल-विनोद-वाटिका का बाईसवाँ पुष्प

कृष्णगोपाल माथुर

बाल-विनोद-वाटिका का बाईसवाँ पुष्प

युधिष्ठिर

लेखक

श्रीकृष्णगोपाल माथुर

प्रकाशक

गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय

प्रकाशक और विक्रेता

लखनऊ

सादी ।।)] सं० १९८६ वि० [रंगीन जिल्द १)

प्रकाशक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ

मुद्रक
श्रीदुलारेलाल भार्गव
अध्यक्ष गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस
लखनऊ

सूची

उनका मन बहुत दुःख पाने लगा। उन्होंने सब काम-काज छोड़ दिए, किसी काम में उनका मन न लगता था। वे रात-दिन बहुत ही दुःखी रहने लगे।

कुछ दिन इसी तरह बीते। एक दिन देवव्रत को अपने पिता का यह हाल उनके नौकरों से मालूम हुआ। पिता के भक्त देवव्रत सब हाल जानकर फ़ौरन् ही मल्लाह के घर गए। मल्लाह ने उनका बड़ा आदर किया, और उनको अच्छे आसन पर बिठाया। इसके बाद मल्लाह ने उनसे कुशल-मंगल और आने का कारण पूछा। देवव्रत बोले—"मल्लाह, पिताजी आपकी लड़की सत्यवती से विवाह करना चाहते हैं, इसलिये आप उन्हें अपनी लड़की देकर उनकी इच्छा पूरी कीजिए।" मल्लाह ने बड़ी नम्रता के साथ उत्तर दिया—"यदि मेरी लड़की का पुत्र आपके पिताजी की गद्दी का मालिक हो सके, तो मैं आपकी बात मान सकता हूँ। परंतु आप अपने पिताजी के असली पुत्र मौजूद हैं, ऐसी दशा में सत्यवती का पुत्र गद्दी का मालिक कैसे हो सकता है?" देवव्रत बोले—"आपकी बेटी के पेट से जो बालक पैदा होगा, वही गद्दी का मालिक होगा, और राज्य करेगा। मैं स्वयं गद्दी का मालिक न होकर उसे ही राज्य का मालिक मानूँगा। और आज मैं सब लोगों के सामने यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं जन्म-भर ब्रह्मचर्य से रहूँगा, अपना विवाह नहीं करूँगा।"

देवव्रत की यह प्रतिज्ञा सुनकर मल्लाह बहुत प्रसन्न हुआ,

और उनकी निःस्वार्थ पितृ-भक्ति की बार-बार बड़ाई करने लगा। अब मल्लाह को किसी तरह का उज्र करने का कोई मौक़ा न रहा, और वह महाराज शांतनु के साथ अपनी लड़की सत्यवती का विवाह कर देने को राज़ी हो गया। देवव्रत अपने पिता की इच्छा पूरी कर सके, इसकी उन्हें बहुत ख़ुशी हुई। उन्होंने ख़ुशी के साथ सत्यवती से कहा—"मा, आइए, रथ में बैठकर हमारे घर पधारिए। आपको माता के रूप में देखकर आज मुझे बहुत आनंद हो रहा है।" यह कहकर देवव्रत सत्यवती को रथ में बिठाकर घर ले आए, और सारा हाल पिताजी से कह सुनाया। सत्यवती के साथ शुभ घड़ी में शांतनु का विवाह हो गया। देवव्रत ने सारा जीवन क्वाँरे रहकर बिताया और ब्रह्मचर्य का पालन करके जगत् में ख़ूब बड़ाई पाई। इसीसे उनका नाम 'भीष्म' रक्खा गया। आज तक संसार में वे "भीष्म-पितामह" के नाम से प्रसिद्ध हैं।

सत्यवती के पेट से चित्रांगद और विचित्रवीर्य नाम के दो पुत्र पैदा हुए। राजा शांतनु इन दोनो पुत्रों को बचपन में छोड़कर मर गए। पिता के मर जाने पर भीष्म इन दोनो भाइयों का बड़े प्यार के साथ पालन करने लगे। जब वे बड़े हुए, तब उनको 'युवराज' बनाया, और आप ख़ुद राज्य का सारा काम चलाने लगे। जब वे विवाह के योग्य हुए, तब भीष्म ने काशीराज की दो कन्याएँ अंबिका और अंबालिका के साथ विचित्रवीर्य का विवाह कर दिया। चित्रांगद एक

लड़ाई में किसी गंधर्व के हाथ से मारे गए। कुछ दिन बाद विचित्रवीर्य भी यक्ष्मा-रोग से पीड़ित हो थोड़ी ही उम्र में मर गए। उनकी दोनो स्त्रियाँ विधवा हो गईं। इसके बाद अंबालिका के पेट से पांडु पैदा हुए, और अंबिका के पेट से धृतराष्ट्र तथा उनकी एक दासी के पेट से विदुर, जो बड़े होने पर ख़ूब बुद्धिमान् और समझदार बन गए।

इनके जन्म लेने के बाद राज्य में चारो ओर आनंद-ही-आनंद छा गया। राज्य की सारी ज़मीन में फल-फूल और नाज ख़ूब पैदा होने लगा। प्रजा का धन बढ़ गया, और सारा नगर सुखी हो गया। भीष्म इन दोनो भतीजों का पुत्र के समान पालन करने लगे। जब वे शिक्षा के योग्य हुए, तब उनको सब विषय की शिक्षा देने के लिये अलग-अलग शिक्षक नियुक्त किए गए। थोड़े ही दिनो में पांडु धनुष-विद्या में निपुण हो गए। विदुर बचपन से ही सचाई और धर्म-प्रेम के लिये सबके प्यारे बन गए थे। धृतराष्ट्र अपने शरीर के बल के लिये प्रसिद्ध हो गए। इस तरह तीनो की शिक्षा बहुत अच्छे ढंग से हुई।

धृतराष्ट्र बड़े थे, परंतु वे जन्म के अंधे थे। इसलिये बड़े बेटे होने से राज्य के हक़दार होते हुए भी वे राजगद्दी पर नहीं बैठ सके। पांडु ही राजा हुए। उनके राज करने से प्रजा बड़े आराम में रहने लगी। भीष्म राज्य के हित के लिये सब कामों में पांडु को सहायता देने लगे।

जब भतीजे विवाह योग्य हुए, तब भीष्म ने गांधार-राज की

कन्या गांधारी के साथ धृतराष्ट्र का विवाह कर दिया। गांधारी ने जब सुना कि मेरे पिता ने मुझे अंधे पति के हाथ सौंपा है, तो उसने भी अपनी दोनो आँखों पर कपड़े की पट्टी बाँध ली। उसने सोचा कि जब मेरे पति अंधे हैं, तो मैं आँखोंवाली होकर क्या करूँगी। यदि मैं पति की तरह नहीं हो जाऊँगी, तो शायद वे मेरा अपमान करें। इसीलिये गांधारी अपनी आँखों पर पट्टी बाँधकर, पति की तरह, अंधी बन गई। पति की भक्ति का यह कैसा अच्छा उदाहरण है।

विवाह के दिन गांधारी का भाई अपनी बहन को कौरवों के घर ले गया, और भीष्म की आज्ञानुसार उसे धृतराष्ट्र के हाथों में सौंप दिया। तबसे गांधारी अच्छे चाल-चलन, सुशीलता और अच्छे बर्ताव के साथ जीवन बिताने लगीं। अपने अच्छे बर्ताव के कारण वह सभी को प्यारी बन गईं। उसके पति धृत-राष्ट्र उस पर बहुत प्रसन्न रहने लगे।

धृतराष्ट्र का विवाह हो जाने पर भीष्म ने राजा कुंतिभोज की कन्या कुंती के साथ पांडु का विवाह कर दिया। उस समय मद्र-देश के राजा शल्य की 'माद्री' नाम की एक बहुत सुंदरी कन्या थी। भीष्म ने उसके साथ पांडु का दूसरा विवाह कर देने का विचार किया। इस म के ाक लिये वे मद्र-देश में गए और शल्य से अपना विचार प्रकट किया। शल्य ने उनकी बात मान ली, और बड़ी प्रसन्नता से अपनी कन्या देना मंज़ूर कर लिया। भीष्म रूपवती माद्री को लेकर हस्तिनापुर आए

और अच्छी घड़ी में पांडु के साथ उसका भी विवाह कर दिया। विवाह के बाद पांडु अपनी स्त्रियों के साथ सुख से रहने लगे। उनकी दोनो स्त्रियाँ भी आपस में प्रेम बढ़ाकर पति की सेवा करने लगीं।

इस प्रकार तेरह दिन ही बीते थे कि पांडु के मन में सब देशों के जीतने की इच्छा पैदा हुई। वे भीष्म, धृतराष्ट्र आदि बड़े-बूढ़ों की आज्ञा लेकर बहुत-सी फ़ौज के साथ देशों को जीतने के लिये निकले। जाते समय नगर की स्त्रियों ने मंगल-गीत गाए और ब्राह्मणों ने मांगलिक चीजें भेंट करते हुए पांडु को आशीर्वाद दिया। पांडु पहले दशार्णपति के राज्य में गए और लड़ाई में उसे हराकर मगध-राज्य को कूच किया। वहाँ मगध के राजा को मारकर उसके खज़ाने का सारा धन ले लिया। इसके बाद मिथिला में जाकर वहाँ के राजा को लड़ाई में हराया। इस प्रकार पांडु ने अपने तेज से चारो दिशाओं को जीत-कर कौरवों के वंश की कीर्ति जमा दी। राजा लोग महावीर पांडु के वश में होकर उनको हीरा-मोती, सोना-चाँदी, हाथी-घोड़े, गो-बैल, रथ-गाड़ी, और कई तरह की चीजें भेंट में देने लगे। महाराज पांडु इन सब चीज़ों को लेकर बड़े आनंद के साथ हस्तिनापुर को लौटे।

भीष्म ने जब लोगों के मुँह से पांडु के आने का हाल सुना, तो वे नगर के मुख्य-मुख्य लोगों, मंत्री और महाजनों को साथ लेकर पांडु की अगवानी के लिये गए। उनके साथ ही नगर

के अनेक स्त्री-पुरुष भी पांडु का स्वागत करने के लिये नगर से बाहर पहुँचे। उन्होंने कुछ दूर जाकर देखा कि पांडु की सेना हाथी-घोड़े, रथ-गाड़ी, ऊँट-बैल, और रत्नों से भरी गाड़ियों को लेकर आ रही है। यह देखकर वे बहुत प्रसन्न हुए। जब उन्होंने पाँडु को सेना-समेत पास आते देखा, तो वे हर्ष के साथ जय-जयकार करने लगे।

पांडु ने आकर पहले भीष्म के पैर छुए, इसके बाद नगर के मुख्य-मुख्य लोगों से मिलकर सबका सम्मान किया। भीष्म पांडु को पाकर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने बड़े प्रेम के साथ पांडु को गले से लगाया। शंख, शहनाई, ढोल, नक़्क़ारे आदि बाजे बजने लगे। भीष्म पांडु को लेकर राजधानी में आए। पांडु के हस्तिनापुर आ जाने पर भीष्म ने पारशव की लड़की के साथ विदुर का विवाह कर दिया।

कुछ दिन आनंद से बीते। इसके बाद एक दिन पांडु ने सब सुखों को छोड़कर जंगल में जाने का विचार किया। विचार करते ही वे दोनो स्त्रियों के साथ जंगल को चल दिए। जंगल में रहने का उनका पक्का इरादा हो गया, इसी से उन्होंने वहाँ अपने रहने का अच्छा स्थान बना लिया, और दोनो स्त्रियों के साथ बड़े सुख से रहने लगे। कभी वे शिकार खेलते, कभी हिमालय की भूमि में चले जाते और कभी दूसरे स्थानों में सैर करते। इस प्रकार पांडु प्रसन्न मन से बड़े सुख के साथ जंगल में रहने लगे।

इस जंगल में उनकी रानियों के पाँच पुत्र हुए। कहते हैं, इन पाँचो पुत्रों ने देवताओं के आशीर्वाद से जन्म लिया था। इन पाँचो पुत्रों के नाम ये रक्खे गए—युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव। इनमें से युधिष्ठिर, भीम और अर्जुन ये तीनो कुंती के पेट से पैदा हुए और नकुल एवं सहदेव माद्री की कोख से। युधिष्ठिर धर्म की कृपा से पैदा हुए थे, इसलिये उनका नाम धर्म-पुत्र युधिष्ठिर पड़ा, और इसी नाम से वे प्रसिद्ध हुए।

इस तरह पांडु अपनी दोनो स्त्रियों और पाँचो पुत्रों के साथ बड़े सुख से रहने लगे। वे वन की सुंदरता, पक्षियों का मीठा गाना, पर्वतों की शोभा, फल-फूलों के आनंद में मग्न रहते थे। वन में बहुत-से तपस्वी भी रहते थे। पांडु ने अपने अच्छे बर्ताव से उन तपस्वियों का ध्यान अपनी ओर खींच लिया था।

एक बार वसंत-ऋतु में महाराज पांडु अपनी छोटी स्त्री माद्री के साथ हिमालय के सुनसान जंगल में सैर करने गए। वहाँ एकाएक बेहोश होकर वे ज़मीन पर गिर पड़े, और थोड़ी ही देर में उनके प्राण निकल गए। एकाएक पति की मौत हो जाने से माद्री पगली की तरह रोने-चिल्लाने लगी। उसने अपने प्यारे पति के साथ मरने का निश्चय कर लिया। इधर कुंती ने जब माद्री का रोना सुना, तो वह नकुल और सहदेव को लेकर वहाँ आई, और पति की लाश देखकर ज़ोर-ज़ोर

से रोने लगी। उसका 'हा नाथ! कहाँ गए?' 'हा नाथ! कहाँ गए?' कहकर रोना सबके चित्त को व्याकुल करने लगा।

संसार में स्त्री के लिये पति ही सब कुछ है। पति के विना स्त्री का जीना व्यर्थ है। ऐसा सोचकर माद्री ने पति के साथ सती होने का निश्चय किया। कुंती उसको बार-बार समझाने और मना करने लगी, परंतु माद्री अपने विचार से ज़रा भी नहीं हटी। अंत में माद्री ने आँखों में आँसू भरकर कुंती से कहा—"बहन, तुमसे मेरी यही प्रार्थना है कि महाराज के शरीर के साथ मेरा यह शरीर चिता में जला दें और मेरे इन दोनो बालकों का आप अपने ही पुत्रों की तरह पालन करें।" यह कहकर पतिव्रता माद्री ने भी अपनी आँखें मूँद लीं।

इसके बाद तपस्वी लोग कुंती, पाँचो बालकों और पांडु तथा माद्री की लाश को लेकर हस्तिनापुर आए। वहाँ आने पर भीष्म, विदुर, धृतराष्ट्र और दुर्योधन आदि सब कुटुंबी इकट्ठे हुए। भाई के मरने का हाल सुनकर धृतराष्ट्र रोने और विलाप करने लगे। कुंती पाँचो बच्चों को लेकर महलों में गईं। बात-की-बात में पांडु के मरने की ख़बर सारे नगर में फैल गई। इस दुःखदायी समाचार को सुनकर सब लोग राज-महल में आकर इकट्ठे हुए। सबकी आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी। ऋषियों ने कहा—"पांडु को शरीर छोड़े

आज सात दिन हो गए हैं। पतिव्रता माद्री ने भी पति के साथ ही शरीर छोड़ा है, इसलिये उस सती को भी उसकी इच्छानुसार उसके पति के साथ जला देना चाहिए।" यह कहकर ऋषि अपने-अपने स्थान को चले गए।

इसके बाद धृतराष्ट्र की आज्ञा से दोनो की क्रिया बड़ी धूम-धाम के साथ हुई। भीष्म आदि महात्माओं ने दोनो शवों पर चंदन लगाया, पुष्प चढ़ाए और उनको विमान में बिठाकर श्मशान में ले गए। दोनो शवों की रथी को इन लोगों ने अपने कंधों पर उठाया। पाँचो पुत्र, कुंती और दूसरी कुरु-कुल की नारियाँ रथी के पीछे-पीछे गईं। हज़ारों नगर-निवासी रोते-चिल्लाते साथ गए। दुःख-भरे बाजों की आवाज़ से चारो दिशाएँ दुःख से भर गईं। भिखमंगों को रुपया-पैसा, धन-धान्य बाँटा गया। इसके बाद सबके देखते-देखते राजा-रानी को जला दिया गया।

बारह दिन सूतक रखने के बाद बड़ी धूम-धाम से श्राद्ध किया गया। श्राद्ध में धृतराष्ट्र ने हज़ारों ब्राह्मणों और जाति के लोगों को भोजन कराया। दरिद्रों को ख़ूब दान दिया। और कई ब्राह्मणों को अच्छे-अच्छे गाँव जागीर में दिए तथा धन-धान्य से उनको मालामाल कर दिया।

दूसरा अध्याय

इधर युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन आदि पाँचो भाई उजाले पाख के चाँद की तरह दिनों-दिन बढ़ने लगे। वेद की विधि के अनुसार उनको जनेऊ पहनाया गया। पांडु के पुत्र पांडव और धृतराष्ट्र के पुत्र कौरव के नाम से पुकारे जाने लगे। धृतराष्ट्र के पुत्रों में दुर्योधन बड़े बुरे स्वभाव का था। पाँचो पांडव और धृतराष्ट्र के पुत्र साथ-साथ खेलते और अपना समय बड़े आनंद से बिताते थे। परंतु जितने खेल वे खेलते, उन सबमें पांडवों ही की जीत रहती, कौरव एक प्रकार से हार जाते। पांडवों का ऐसा हाल देखकर सब लड़के उनसे वैर रखने लगे।

भीमसेन के शरीर में ख़ूब बल था। एक तरफ़ धृतराष्ट्र के सौ पुत्र थे, और दूसरी तरफ़ उनके मुकाबले में अकेले भीमसेन, तो भी भीमसेन मौक़ा पड़ने पर धृतराष्ट्र के सौ पुत्रों को एक साथ पछाड़ सकता था। कभी-कभी ऐसा होता कि भीमसेन उन्हें धरती पर डालकर रौंदता और उनकी बुरी गति करता था, जिससे किसी का हाथ टूट जाता, किसी की टाँग टूट जाती और किसी का शरीर लोहू-लुहान हो जाता था। इस भय से सब बालक भीमसेन से क्षमा माँगते और प्राण बचाने के लिये दुःख-भरी आवाज़ से चिल्लाते थे।

एक दिन जल-क्रीड़ा के समय भीमसेन ने दस लड़कों को

पानी में डुबो दिया। वे बेचारे बहुत घबराए। इस तरह भीमसेन कई बार कर दिया करता था। कभी दुर्योधन या और कोई किसी पेड़ पर फल-फूल तोड़ने चढ़ते, तो नीचे से भीमसेन उस वृक्ष को इतने ज़ोर से हिलाता कि वे बेचारे धड़ाम से धरती पर आ गिरते। किसी के हाथ में चोट आती, किसी के पैर में। किसी का माथा फूटता, तो किसी के दाँत टूटते। इस प्रकार क्या खेल में, क्या कुश्ती में, क्या शस्त्रों के अभ्यास में, क्या पढ़ने में, किसी भी विषय में भीम को दुर्योधन आदि हरा नहीं सकते थे। वृकोदर भीम को इस तरह सब कामों में जीतते देखकर धृतराष्ट्र के सब पुत्र अपने मन में उससे वैर रखने लगे।

नतीजा यह हुआ कि दुर्योधन हर तरह से भीम का बुरा करने की कोशिश करने लगा। उसने एक दिन नगर से कुछ दूर फूलों के बाग़ में एक सुंदर प्रीति-भोज किया। उसके नौकरों ने उस स्थान में पांडवों के लिये एक सुंदर घर बनवाया, और उसे ख़ूब सजाकर उसमें कई तरह की मिठाइयाँ रख दीं। इसी मौक़े पर दुर्योधन ने युधिष्ठिर आदि पाँचो पांडवों, अपने भाइयों और दूसरे सभी मित्रों को निमंत्रण दिया। यह घर गंगा के किनारे बनवाया गया था। न्योता पाकर सब लोग वहाँ जाने की तैयारी करने लगे। युधिष्ठिर बहुत सीधे-सादे थे। वे फ़ौरन् भाइयों-समेत गंगा-तट पर जाने को तैयार हो गए। कोई घोड़े पर सवार हुआ, कोई हाथी पर बैठा, कोई रथ में। इस प्रकार सब लोग सवारियों में बैठ-बैठकर गंगा-तट पर जा पहुँचे।

वहाँ जाकर उन्होंने देखा कि कपड़ों का एक सुंदर नगर-सा बना हुआ है। जगह-जगह फ़ौवारे चल रहे हैं, और सुंदर फूल-बाग़ बने हुए हैं। यह दृश्य देखकर पांडवों को बड़ा आनंद हुआ। थोड़ी देर सैर करने के बाद युधिष्ठिर सब भाइयों के साथ भोजन करने बैठे। उनके साथ कौरव भी जीमने बैठे। भोजन में अनेक प्रकार की चीज़ें बनाई गई थीं। उनका स्वाद ले-लेकर वे लोग आपस में ख़ूब प्रशंसा करने लगे। जिसे जो चीज़ अच्छी लगती, वह दूसरे को दे देता था। इस तरह देन-लेन में दुष्ट दुर्योधन ने विष-मिली मिठाई भीमसेन को दे दी। भीम को दुर्योधन पर किसी प्रकार का संदेह तो था ही नहीं, उन्होंने वह मिठाई बड़े शौक़ से खा ली। यह देख दुर्योधन मन-ही-मन ख़ूब प्रसन्न हुआ। उसने समझा कि मेरा मतलब सिद्ध हो गया है। अस्तु, भोजन हो जाने पर कौरवों और पांडवों ने मिलकर बड़े आनंद से जल-विहार किया।

जल का खेल खेलते-खेलते संध्या हो गई। सबने जल से निकल-निकलकर अपने कपड़े और गहने पहने। परंतु ज़हर के प्रभाव से भीमसेन गंगा के किनारे ही बेहोश होकर पड़े रहे। उनको किसी प्रकार की सुधबुध न रही। यह बात और कोई नहीं देख पाया, सिर्फ़ दुर्योधन ही जानता था। जब उसने देखा कि भीमसेन बिलकुल होश में नहीं हैं, तो वह उनके पास गया और हाथ-पाँव बाँधकर उन्हें गंगा में डुबो आया। गंगा के भीतर-ही-भीतर भीमसेन नागलोक में पहुँचे। वहाँ सर्प

उनके सारे शरीर में पैने दाँतों से काटने लगे। सर्पों के विष से भीमसेन के शरीर का मिठाईवाला विष जाता रहा। वे होश में आकर साँपों को मारने लगे। फिर साँपों की फ़रियाद पर नागराज वासुकि ने आकर उनको पहचाना। कुंती के पिता कुंतिभोज नागराज वासुकि के दोहिते थे। भीमसेन उन्हीं कुंति-भोज के दोहिते निकले। नागराज ने उनको एक अमृत की दवा पिलाई, और सुंदर बिछौने पर सुला दिया।

इधर सब राजकुमार अपनी-अपनी सवारियों पर बैठकर घर को लौट आए। सबने मन में सोचा कि भीमसेन पहले ही आ गए होंगे। युधिष्ठिर भी इसी ख़याल में थे। उन्होंने जल्दी से आकर माता के पैर छुए, और भीम के आने की बात पूछी। भीम आए तो थे ही नहीं, इसीलिये कुंती युधिष्ठिर से सब हाल जानकर रोने लगीं। बोलीं—"हाय! मेरा भीमसेन कहाँ गया? युधिष्ठिर, तुम तीनों भाइयों को साथ ले जाकर भीमसेन की तलाश करो।"

युधिष्ठिर को यह जानकर बड़ा दुःख हुआ कि मेरे प्रिय भाई भीमसेन अभी तक नहीं आए। न-मालूम कहाँ रह गए। युधिष्ठिर को बड़ी घबराहट पैदा हुई। वे पहले ही भाई भीम के बिना दुःखी थे, और उसकी तलाश में जाना चाहते थे। अब माता की भी आज्ञा हो गई। माता की आज्ञा का पालन करना धर्मराज युधिष्ठिर-जैसे सपूत के लिये बहुत ज़रूरी था। इसलिये वे फ़ौरन् ही भीम की खोज में चल निकले।

उनके चले जाने के बाद कुंती ने विदुर को बुलाया, और सारा हाल उनसे कहा। यह भी कहा कि दुर्योधन भीम की हमेशा बुराई चाहता रहता है। मुझे संदेह है कि कहीं उसीने भीम को न मार डाला हो। सब हाल जानकर विदुर बोले—"आप किसी प्रकार की कोई चिंता न करें। भीम बहुत प्रसन्न हैं, और जल्दी ही बहुत ख़ुशी के साथ वे घर को लौट आवेंगे। दुर्योधन चाहे कुछ भी करे, उनका किसी तरह का नुक़सान न होगा। व्यासजी ने वर दिया है कि पांडव चिरंजीवी होंगे। व्यासजी का वर कभी झूठा नहीं हो सकता। आप निश्चिंत रहें, और धीरज रक्खें।" यह कहकर विदुर वहाँ से चले गए।

उधर युधिष्ठिर बड़ी व्याकुलता के साथ भीम को गंगा के किनारे ढूँढने लगे। ढूँढते-ढूँढते उन्हें आठ दिन हो गए। आठ दिन तक उन्होंने अन्न-जल कुछ भी नहीं लिया। केवल भीम की याद में दिन बिता दिए। नवें दिन अचानक उनको भीमसेन मिल गए। भीमसेन को पाकर युधिष्ठिर को जो हर्ष हुआ, वह लिखने में नहीं आ सकता। वे फ़ौरन् ही भाई भीम के गले लिपट गए और बार-बार उन्हें छाती से लगाया। इसके बाद दोनो भाई घर आए। कुंती आठ रोज़ की व्याकुलता के बाद प्यारे पुत्र भीम को पाकर बहुत ख़ुश हुईं और बार-बार उन्हें छाती से लगाने लगीं। उन्होंने सारा हाल भीम से पूछा। भीम ने सब हाल बताया। कुंती का संदेह यह जानकर और

भी मज़बूत हो गया कि ये सब करतूतें दुर्योधन ही की थीं। तबसे उन्होंने पाँचो पुत्रों को और भी सावधान कर दिया।

इसके बाद बालक उसी प्रकार खेल-कूद में मस्त रहने लगे। भीमसेन बड़े निडर थे। वे दुर्योधन की सब करतूतें—जिस तरह विष देकर उन्हें संकट में डाला था, और जिस प्रकार उनका छुटकारा हुआ, वे बातें—सब लोगों से कहने लगे। परंतु धर्म-राज युधिष्ठिर को भीमसेन का यह ढंग पसंद नहीं आया। वे सीधे थे, इसलिये उन्होंने भीमसेन को बड़े प्यार से समझाया—"भाई, ये बातें मत कहो, आख़िर दुर्योधन भी हमारा-तुम्हारा भाई ही है, उससे भूल हो गई होगी, अब वह ऐसा शायद न करेगा और हम लोग भी अब होशियार रहेंगे, आपस में एक-दूसरे को बचाएँगे। नाहक़ दुर्योधन को सब के सामने बदनाम करना ठीक नहीं है। भाई, हो गया, सो हो गया।"

इसी समय से दुर्योधन और उसके साथी तरह-तरह की झूठी बातें बनाकर धृतराष्ट्र का मन पांडवों की तरफ़ से फेरने की कोशिश करने लगे। पांडव भी यह सब जानते थे, लेकिन विदुर की सलाह से उन्होंने प्रकट नहीं किया था। उस समय कृप हथियार चलाने में बड़े चतुर थे, इसीसे उन्हें आचार्य की पदवी मिली थी। इनकी बहन कृपी का विवाह महात्मा द्रोणाचार्य के साथ हुआ था। इन्हीं कृपाचार्य के पास पाँचो पांडव, धृतराष्ट्र के पुत्र और अनेक देशों के राजकुमार अस्त्र-विद्या सीखने

लगे। जब ये लोग अस्त्र चलाने में निपुण हो गए, तो भीष्म को चिंता हुई कि इन्हें ऊँची शिक्षा दिलाने के लिये कोई अस्त्र-विद्या का पूरा जानकार पंडित मिले।

एक दिन जब सब राजकुमार नगर के बाहर गेंद खेल रहे थे, उनके हाथ से गेंद कुएँ में जा गिरी। कुएँ में पानी नहीं था। राजकुमारों ने बहुत कोशिश की, लेकिन गेंद उनसे नहीं निकली। तब उन्होंने एक काले ब्राह्मण से, जो उधर होकर जा रहा था, गेंद निकाल देने की प्रार्थना की। ब्राह्मण ने राजकुमारों को धिक्कारा, उनकी राजपूती को धिक्कारा और मुट्ठी-भर तिनकों से गेंद को निकाल दिया। गेंद पाकर सब बालक बहुत प्रसन्न हुए और आकर भीष्म पितामह से सारा क़िस्सा कहा। भीष्म ताड़ गए कि वह ब्राह्मण द्रोणाचार्य के सिवा और कोई नहीं हो सकता। उन्होंने द्रोणाचार्य को बुलाया और अच्छी ख़ातिर के साथ उनको ऊँचे आसन पर बिठाया। द्रोणाचार्य आसन पर विराजमान होकर भीष्मपितामह से बोले—"महात्मन्, मैं यहाँ आकर बड़ा प्रसन्न हुआ हूँ। मुझे आपसे कुछ कहना है। कृपाकर मेरी बात सुनिए।

"बालपने में मैं और द्रुपद एक साथ अग्निवेश ऋषि के पास अस्त्र-विद्या सीखते थे। आश्रम में रहते हुए हम दोनो में ख़ूब दोस्ती हो गई थी। उस समय उसने हमसे कहा था कि यदि मैं राज होऊँगा, तो आधा राज्य तुमको दूँगा। अब वह पांचाल देश का राजा है। एक दिन हम ग़रीबी से तंग आकर उसके

पास कुछ लाभ की उम्मेद से गए। बालपन का मित्र होने के कारण हमने उसको मित्र कहकर पुकारा। यह सुनकर वह बड़ा नाराज़ हुआ और बोला—'हे ब्राह्मण, तुम दरिद्र होकर भी मुझको मित्र कहते हो, यह ढिठाई तुम्हारी अच्छी नहीं है। मित्रता बराबरीवालों में हुआ करती है। मैं राजा और तुम ग़रीब ब्राह्मण। मेरी-तुम्हारी मित्रता कैसी!' द्रुपदराज के इन वचनों से मेरा मन बहुत ही दुःखित हुआ। इसी से क्लेश पाता हुआ अब आपके पास आया हूँ। अब मुझे क्या करना चाहिए, कृपा करके वैसी आज्ञा दीजिए।"

द्रुपदराज के ऐसे बर्ताव की बात सुनकर भीष्म ने बहुत दुःख प्रकट किया। वे द्रोणाचार्य को बहुत-सा धन देते हुए बोले—"महात्मन्, मेरे बड़े अच्छे भाग्य हैं जो आज आप मेरे घर पधारे हैं। आप मेरे पोतों को अस्त्र-विद्या सिखाने का भार लें। मैं उनको आप ही के हाथों में सौंपता हूँ। आपको जब जिस बात की आवश्यकता हो, कह दिया करें, आपकी आज्ञा के अनुसार सारा प्रबंध हो जायगा। आपको किसी बात की तकलीफ़ नहीं रहेगी।" यह कहकर पितामह भीष्म ने उनको एक बहुत अच्छे मक़ान में ठहरा दिया। द्रोणाचार्य परिवार-समेत उसमें सुख से रहने लगे।

द्रोणाचार्य के पास धनुष-विद्या और दूसरी अस्त्र-विद्याएँ सीखने के लिये चारो ओर से बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं के पुत्र आने लगे। द्रोणाचार्य दूर-दूर तक प्रसिद्ध हो गए। वे कुरु-

वंश का भला चाहनेवाले थे। यह भी उनको ख़याल था कि किसी नीच जाति के लड़के के संग से कहीं कुरु-वंश के बालक बिगड़ न जायँ। इसी से उन्होंने निषाद के पुत्र एकलव्य को धनुर्विद्या सिखाना मंज़ूर नहीं किया।

कुरु-बालक द्रोणाचार्य के पास पढ़ते-पढ़ते ख़ूब होशियार हो गए। अब उनकी परीक्षा का समय आ गया। द्रोणाचार्य ने एक नक़ली चिड़िया बनाकर एक पेड़ की डाल पर रख दी। इसके बाद जब सब तैयार हो गए, तो द्रोण ने युधिष्ठिर से कहा—"बेटा, तुम मेरे कहते ही बाण छोड़ देना।" युधिष्ठिर द्रोण की आज्ञानुसार धनुष-बाण लेकर निशाना मारने को खड़े हो गए। थोड़ी देर में द्रोण ने युधिष्ठिर से कहा—"तुम पेड़ के ऊपर उस पक्षी को देखो।" युधिष्ठिर बोले—"हाँ, मैं देख रहा हूँ।" द्रोण ने फिर कहा—"धर्मपुत्र, क्या तुम इस पेड़ को, मुझको और अपने भाइयों को देख रहे हो?" युधिष्ठिर ने जवाब दिया—"गुरुदेव, मैं इस पेड़ को, आपको, भाइयों को और पेड़ की चिड़िया को बराबर देख रहा हूँ।"

यह सुनकर गुरुजी नाराज़ हो गए। उन्होंने युधिष्ठिर को हटा दिया। और धृतराष्ट्र के पुत्रों को बुलाया। परंतु उनसे भी ऐसा ही उत्तर सुनकर उनको भी अलग हटा दिया। इसके बाद द्रोणाचार्य बड़ी प्रसन्नता के साथ अर्जुन से बोले—"बेटा, अब तुमको ही निशाना मारना होगा। गुरु का वचन सुनकर अर्जुन धनुष पर बाण चढ़ाकर तैयार हो गए। तब द्रोण ने

उनसे पूछा—"बेटा, अब तुम क्या देख रहे ? क्या तुम पेड़ को, पेड़ की चिड़िया को, मुझको और अपने भाइयों को देख रहे हो ?" अर्जुन ने उत्तर दिया—"नहीं गुरुदेव, मैं पेड़ को, आपको या अपने भाइयों को, किसी को भी नहीं देख रहा हूँ। मेरी नज़र सिर्फ़ पक्षी की ओर है। मुझे वही चिड़िया दीख रही है।" द्रोण ने प्रसन्न होकर फिर पूछा—"पक्षी को ठीक तौर पर देख रहे हो ?" अर्जुन ने जवाब दिया—"नहीं, मैं सिर्फ़ उसके माथे को देख रहा हूँ।" अर्जुन की इन चतुराई की बातों से द्रोण बहुत प्रसन्न हुए। बोले—"प्यारे अर्जुन, अब तुम अपने निशाने को मारो।" इतना सुनते ही अर्जुन ने निशाने पर अपना बाण छोड़ दिया। बाण के छोड़ते ही चिड़िया का माथा कटकर ज़मीन पर आ गिरा। सब लोग अचंभे में हो गए। द्रोणाचार्य ने दौड़कर अर्जुन को गले से लगा लिया।

तीसरा अध्याय

इस तरह कुछ दिन बीते। उसके बाद सबकी सलाह से युधिष्ठिर युवराज बनाए गए। युवराज युधिष्ठिर गद्दी पर बैठकर भाइयों के साथ राज का काम करने लगे। युधिष्ठिर का धीरज, भलाई, इंसाफ़ और कई अच्छे गुण देखकर उनकी प्रजा बड़ा अचंभा करने लगी। और, उनको अपना सच्चा मालिक मानकर सुख से रहने लगी।

थोड़े दिन इसी प्रकार बीते। अब सबको राज्य बढ़ाने की चिंता हुई। वीरता दिखाकर अपने-अपने राज्य की हद बढ़ाना राजाओं का एक धर्म-कर्म माना जाता है। युधिष्ठिर के भाइयों में भीम और अर्जुन ही बड़े बलवान् थे। इसलिये वे राज्य बढ़ाने के लिये बाहर निकले। भारत में जितने बड़े-बड़े नगर हैं, वहाँ सभी जगह वे गए। वहाँ उन्होंने कई राजाओं को हरा-कर उनका राज्य अपने राज्य में मिला लिया। इस तरह थोड़े ही समय में उनकी जय-पताका भारत के कई प्रांतों में फहराने लगी। उनकी बहादुरी और जय-जयकार की आवाज़ चारो ओर गूँज उठी।

चारो दिशाओं को जीतकर पांडव अपने राज्य में आए। उनका राज्य बहुत फैल गया, और धन भी उन्हें बहुत मिला। यह सब देखकर धृतराष्ट्र और दुर्योधन आदि कौरव

उनसे वैर रखने लगे। विशेषकर दुर्योधन पांडवों का प्रभाव मिटाने की कोशिश करने लगा। कर्ण सूर्य के अंश से कुंती के पुत्र थे। लेकिन कर्ण, दुर्योधन, शकुनि और दुःशासन सलाह करके राजा धृतराष्ट्र के पास आए। दुर्योधन ने कहा—"पिताजी, पांडवों का ज़ोर बहुत बढ़ रहा है। यदि इन्हें किसी प्रकार से वारणावत भेज दिया जाय, तो हमको इनसे कोई डर न रहे। दुर्योधन के मंत्रियों ने भी दुर्योधन की सम्मति के अनुसार काम करने को धृतराष्ट्र से प्रार्थना की। धृतराष्ट्र को भी यह बात जँच गई। वे माता कुंती-समेत पांडवों को वारणावत भेजने का उद्योग करने लगे।

एक दिन पांडव लोग धृतराष्ट्र की सभा में आए। उस समय दुष्ट दुर्योधन की सलाह से सब लोग वारणावत के जल-वायु और सुंदरता की प्रशंसा करने लगे। वारणावत की ऐसी तारीफ़ सुन-कर उन पाँचो भाइयों ने वहाँ जाकर रहने का निश्चय किया, और सबके सामने यह बात ज़ाहिर भी कर दी। उनका आग्रह देखकर कौरवों को बड़ा हर्ष हुआ। धृतराष्ट्र भी अपना मतलब पूरा होता देख मन-ही-मन बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने युधिष्ठिर का उत्साह बढ़ाने के लिये कहा—"देखो, वारणावत नगर संसार में एक बहुत ही उत्तम स्थान है। लोग प्रतिदिन मुझसे उसकी प्रशंसा किया करते हैं। यदि तुम लोग कुछ दिनों तक वहाँ रहकर आनंद से समय बिताना चाहो, तो अपनी माता-समेत वहाँ जा सकते हो।" युधिष्ठिर धृतराष्ट्र के मन की बुरी

बात तो जानते थे ; परंतु उन्होंने अपने को असहाय समझकर कहा—"जो आज्ञा।" इसके बाद वे माता कुंती और भाइयों के साथ वहाँ जाने को तैयार हुए।

वारणावत नगर में जाने से पहले युधिष्ठिर भीष्म, द्रोण आदि वीरों के पास गए और बहुत ही विनीत भाव से बोले—"हम लोग पूज्य चाचाजी की आज्ञा से वारणावत नगर को जाते हैं। आप लोग प्रसन्न चित्त से हमको आशीर्वाद दीजिए, ताकि हम लोगों का कोई अमंगल न हो।" युधिष्ठिर के मधुर वचन सुनकर सभी ने प्रसन्न चित्त से कहा—"आप ख़ुशी से जाइए, हम आशीर्वाद देते हैं कि आपका मंगल हो, और आप लोग वहाँ सुख से रहें।"

पांडव लोग वारणावत जायँगे, यह सुनकर दुर्योधन के आनंद की सीमा नहीं रही। उसने मन में सोचा कि अब मेरा मतलब पूरा होने में अधिक देर नहीं है। दुर्योधन का पुरोचन-नाम का एक मंत्री था। वह जाति का मुसलमान था। दुर्योधन ने उसको बुलाकर कहा—"देखो पुरोचन, मेरा यह धन केवल मेरा ही नहीं है, तुम भी इसके मालिक हो। शायद तुम्हें मालूम होगा कि पिताजी की आज्ञा से पांडव लोग वारणावत जा रहे हैं। तुमको, उनके पहुँचने के पहले ही वहाँ जाना होगा, और उनके रहने के लिये एक सुंदर घर बनाना होगा। यह घर सन और लाख आदि कई तरह की वस्तुओं से बनाना पड़ेगा, जिससे आग लगाते ही फ़ौरन् जल उठे। इस घर का नाम

"लाक्षा-गृह" होगा। घर के ऊपरी हिस्से में तुम ऐसा सुंदर लेप करना, जिससे घर की भीतरी बातें कोई भी न जान पावे। जब पांडव लोग वारणावत पहुँचें, तब तुम उनको बड़ी ख़ातिर के साथ ले जाकर उसी घर में ठहराना। उस घर के बारे में उनको किसी प्रकार का संदेह उत्पन्न न हो, इसलिये तुम भी उन्हीं के साथ वहाँ रहना। इस तरह एक वर्ष वहीं बीतना चाहिए। एक वर्ष के बाद किसी रोज़ आधी रात को, जब सब नींद में सोए हों, तब तुम इस घर में आग लगा देना, और ख़ुद अपने को बचाने के लिये घर से भाग जाना।"

दुष्ट आदमियों के साथ दुष्टों ही का मेल होता है। इसीलिये दुर्योधन की बुरी सलाह सुनकर पुरोचन का मन आनंद से नाचने लगा। वह फ़ौरन् ही "जो आज्ञा" कहकर वहाँ से चल दिया, और दुर्योधन की आज्ञानुसार वारणावत पहुँच-कर "लाक्षा-गृह" बनाने लगा। थोड़े ही समय में घर बनकर तैयार हो गया। अब दुष्ट पुरोचन पांडवों के आने की राह देखने लगा।

दुर्योधन के बुरे मतलब को सब लोग जान गए, उसकी चालाकियाँ लोगों से छिपी न रहीं। पर लोगों ने मन की बात मन ही में रक्खी। पांडव जब वारणावत में जाने लगे, तो सारे नगर-निवासी उनको पहुँचाने आए और उनके साथ बहुत दूर तक चले गए। पांडवों के हितैषी विदुर भी पांडवों को पहुँचाने के लिये आए और अपने मन की बात मन ही में रख-

कर पांडवों के साथ-साथ चलने लगे। थोड़ी दूर जाकर उन्होंने विदेश की म्लेच्छ-भाषा में युधिष्ठिर से कहा—"दुर्योधन तुमको मारने के लिये ही वारणावत भेज रहा है। वहाँ तुम्हारे लिये एक "लाख का घर" बनवाया गया है। उसमें रहने को तुमसे कहा जायगा ; और मौक़ा पाकर उसमें आग लगा दी जायगी। इस प्रकार तुमको जला डालने की पूरी-पूरी कोशिश होगी। इस लिये तुम हमेशा सावधान रहना।" यह कहकर बुद्धिमान् विदुर हस्तिनापुर को लौट गए। लौटते समय युधिष्ठिर आदि पाँचो भाइयों ने उनके चरण छुए। उन्होंने भी पाँचो भाइयों को हृदय से आशीर्वाद दिया।

पांडवों से बिदा होकर विदुर अत्यंत दुःख के साथ हस्तिनापुर लौट आए। पांडव लोग माता कुंती को लेकर वारणावत पहुँचे। उनके आने की बात सुनकर झुंड-के-झुंड नगर-निवासी उनकी अगवानी के लिये आए ; और उनको अपने-अपने घर ठहराने का अनुरोध करने लगे। पांडवों से मिलकर और उनके अच्छे बर्ताव को देखकर सब बड़े प्रसन्न हुए। सबकी यह इच्छा थी कि ये हमारे घर पर ठहरें। परंतु दुर्योधन का दुष्ट मंत्री पुरोचन कब चूकनेवाला था। उसके रहते पांडव दूसरे के घर कैसे ठहर सकते थे। वह बोला—"मैंने पहले से ही आपके लिये एक सुंदर घर तैयार कर रक्खा है, आप वहाँ पधारिए।"

पुरोचन की बात सुनकर युधिष्ठिर ने वहाँ जाना निश्चय

किया। वे इस धोकेबाज़ी को जानते थे, तो भी उन्होंने भाइयों और माता के साथ उसी घर में जाना अच्छा समझा। घर का बाहरी हिस्सा बड़ा ही सुंदर था। उसे देखकर कोई यह नहीं जान सकता था कि यह घर मौत का ख़ज़ाना है। धर्मराज युधिष्ठिर का सब काम धर्म के ऊपर हुआ करता था। न उनको मरने का डर था, न जीने की ख़ुशी। वे उसी घर में रहने को ख़ुशी से तैयार हो गए, और उसकी सुंदरता देखकर उनको बड़ी प्रसन्नता हुई। परंतु भीम घर में घुसकर इधर-उधर फिरने लगे। फिरते समय उनको घर में गंधक और तेल की गंध मालूम हुई। वे फ़ौरन् ही समझ गए कि यह "लाख का घर" है; और हमें फूँक देने के लिये बनाया गया है। उन्होंने धर्मराज से कहा—"भाई साहब, यह घर तो अवश्य ही सन, तेल, गंधक और लाख आदि से बनाया हुआ मौत का घर है। इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं है। हमारे विनाश के लिये ही यह बना है। इसलिये हम लोगों को हस्तिनापुर लौट चलना चाहिए।"

भीम की बात सुनकर युधिष्ठिर बोले—"भाई, इसका हाल तो मुझे पहले ही से मालूम है। हमारे यहाँ आते समय चाचा विदुर ने म्लेच्छ-भाषा में मुझसे सब हाल कहकर मुझे होशियार कर दिया है। अब और भी सब ठीक-ठीक समझ में आ गया कि यह घर सचमुच हमारे विनाश के लिये बनाया गया है। किंतु यह जानते हुए भी हम लोगों को इसे छोड़कर हस्तिना-

पुर चलना ठीक नहीं है । क्योंकि जिसने हमारे विनाश के लिये इतनी चेष्टा की है, वह हमें आसानी से कभी हस्तिनापुर न जाने देगा । वह हमारे रास्ते में अनेक आपदाएँ खड़ी करेगा । इसलिये यहीं रहकर ही विपद् से बचने की कोशिश करनी चाहिए । हम यहाँ पर सारा दिन जंगल में शिकार खेला करेंगे, इससे चारो ओर के मार्ग हमें मालूम हो जायँगे । इस प्रकार कुछ दिन यहाँ रहकर हम लोग यहाँ से चल देंगे ।" यही बात तै पाई, और पाँचो भाई अपनी माता के साथ उसी घर में रहने लगे ।

इधर विदुर को बड़ी चिंता हुई कि पांडवों के प्राण किस प्रकार बचाए जायँ । दुष्ट दुर्योधन का बुरा मतलब इनके सिवा और कोई नहीं जानता था । इसलिये उन्होंने "लाक्षा-गृह" के नीचे एक सुरंग बनवाकर पांडवों के बचाने का उपाय सोचा । इसके लिये उन्होंने एक कारीगर को पांडवों के पास भेजा कारीगर ने जाकर युधिष्ठिर से विदुर का संदेश कहा और उनको विश्वास दिलाने के लिये यह भी कहा कि आपसे वारणावत आते समय विदुर ने विदेशी भाषा में 'लाक्षा-गृह' की बात कहकर आपको सावधान किया था । कारीगर की इन बातों से युधिष्ठिर को विश्वास हो गया और उन्होंने कारीगर को सचमुच विदुर का भेजा हुआ जाना । इसके बाद कारीगर ने धर्मराज युधिष्ठिर की आज्ञा से 'लाक्षा-घर' के नीचे घर से गंगाजी के किनारे तक एक

गहरी सुरंग बनाकर तैयार कर दी। इस सुरंग का दरवाजा मिट्टी से इस तरह ढक दिया गया कि किसी को इस बात का शक न हो कि यहाँ सुरंग का द्वार है।

इस प्रकार एक वर्ष बीत गया। पुरोचन ने सोचा कि पांडवों को अब किसी प्रकार का संदेह नहीं रहा, अब ये निडर होकर घर में रहते हैं। इसलिये अब मेरी मनोकामना सिद्ध होने में कोई कठिनाई नहीं होगी। इधर पाँचो भाइयों ने यह बात ठहराई कि एक दिन आधी रात को, जब पुरोचन गहरी नींद में सोया हो, हम लोग इस घर में आग लगाकर सुरंग के रास्ते से निकलकर गंगा के किनारे पहुँच जायँ।

एक वर्ष और बीत गया। एक दिन विदुर के विश्वासी दूत ने आकर पांडवों से कहा कि दुष्ट पुरोचन कृष्ण पक्ष की चौदस को इस घर में आग लगावेगा, सो आप लोग सावधान रहना। पांडव सावधान हो गए।

इसी चौदस के दिन एक भिखारिनी अपने पुत्रों को लेकर कुंती के पास भिक्षा माँगने आई। दयामयी कुंती ने उसे और उसके पुत्रों को ख़ूब भोजन कराया। पेट भर जाने के कारण भिखारिन अपने लड़कों के साथ रात को उसी घर में सो रही। उस रात को भीम ने पुरोचन को गहरी नींद में सोया देख घर में आग लगा दी, और आप भाइयों के साथ माता कुंती को लेकर सुरंग के रास्ते से गंग-तट पर पहुँच गए। लाख का घर जल उठा। प्रचंड अग्नि की लपटें बहुत ऊँची-ऊँची उठने

लगीं। बात-की-बात में अग्निदेव ने पापी पुरोचन के साथ भिखारिन और उसके बच्चों को भस्म कर डाला।

प्रातःकाल हुआ। सूर्य के उदय होते ही वारणावत-निवासी यह ख़बर पाकर वहाँ आए। देखा कि लाक्षा-घर जलकर राख हो गया है। पांडव लोग इसमें कुंती के साथ अवश्य जल गए हैं, यह जानकर नगर-निवासी उनके लिये विलाप करने लगे। पांडव अपनी भलाई से सभी के प्यारे थे। इसलिये उनके जल जाने का दुःख सबको अत्यंत व्याकुल करने लगा। सब आपस में कहने लगे कि इस महापाप के मूल-कारण धृतराष्ट्र और दुर्योधन हैं।

पांडव लोग जल गए, यह समाचार दूत द्वारा जल्द धृत-राष्ट्र के पास पहुँच गया और बिजली की तरह सारे नगर में फैल गया। राजमहल में भी इस दुःखदायी समाचार के पहुँचने में देर नहीं लगी। धृतराष्ट्र मन-ही-मन प्रसन्न हुए; पर लोक-लज्जा के भय से नक़ली दुःख प्रकट करने लगे। प्रसन्नता उनको इस बात की होने लगी कि अब पांडवों का सारा राज्य और धन-माल मेरे हाथ में आ जायगा, और मैं ख़ुशी से राज्य का सुख भोगूँगा। यह समाचार सुनकर दुर्योधन को जो आनंद हुआ, उसका वर्णन कौन कर सकता है।

हस्तिनापुर में कोई ऐसा आदमी नहीं था, जो पांडवों के अच्छे गुण देखकर उनको न चाहता हो। सभी लोग उनके गुणों पर मोहित थे। इसलिये सब दुःख के साथ आपस में

कहने लगे—"धृतराष्ट्र और दुर्योधन की चालाकी से ही हस्तिनापुर का नाश हुआ है। पांडवों के बिना अब हम कैसे जी सकेंगे।" यह सोचकर वे पांडव और कुंती के लिये फूट-फूटकर रोने लगे।

इधर गंगा के किनारे पांडवों को प्रभात हुआ। वहाँ उनके लिये विदुर का भेजा मल्लाह नाव लिए तैयार था। इसलिये वे सूर्य के उदय होते ही गंगा-पार होकर एक जंगल में पहुँच गए। वहाँ से फिर उन्होंने गहरे जंगल में चलना शुरू किया। चलते-चलते थककर वे एक वृक्ष के नीचे विश्राम करने को बैठ गए। थके तो थे ही, थोड़ी देर बाद भीम के सिवा सबको गहरी नींद आ गई। भीम सब की रखवाली करते रहे। संकट का समय, घना जंगल, भाई सो रहे थे। भला ऐसी हालत में भीम उनको छोड़कर कैसे कहीं जा सकते थे। वे एक पेड़ के नीचे बैठ गए।

यह जंगल हिड़ंब-वन के नाम से प्रसिद्ध था। यहाँ पर हिड़ंब नाम का एक राक्षस रहता था। उसकी हिड़िंबा नाम की एक बहन थी। हिड़ंब मांस खाता था। जब उसने दूर ही से मनुष्यों की गंध पाई, तो उनको पकड़ लाने के लिये अपनी बहन हिड़िंबा को भेजा। राक्षसी हिड़िंबा फ़ौरन् ही उनके पास पहुँची। मगर यहाँआकर एकाएक उसका मन बदल गया। वह भीम का रूप देखकर रीझ गई, और मन में उन्हें अपना पति बनाने का विचार करने लगी। कहते हैं, अपनी इच्छा पूरी करने के लिये वह
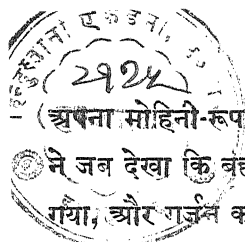
अपना मोहिनी-रूप बनाकर भीम के पास आई। इधर हिड़ंब ने जब देखा कि बहन के आने में देर हुई, तो वह गुस्से में हो गया, और गर्जन करता हुआ वहाँ आकर बहन को डाँटने लगा। उसका यह अभिमान और कूद-फाँद भीम सह नहीं सके, किंतु उनको यह भी भय हुआ कि इसको अगर यहीं मारूँगा, तो इसकी चिल्लाहट से माता और भाइयों की नींद खुल जायगी। इसलिये महापराक्रमी भीमसेन फ़ौरन् ही उस राक्षस की चोटी पकड़कर उसे बहुत दूर ले गए, और वहाँ उसके साथ मल्ल-युद्ध करने लगे। थोड़ी ही देर में उन्होंने उसे ज़मीन पर गिरा दिया। हिड़िंबा की इच्छा पूरी हुई। इसके बाद, धर्मराज युधिष्ठिर की आज्ञा के अनुसार उसी जंगल में, हिड़िंबा के साथ भीम का विवाह हो गया। इस राक्षसी के पेट से भीम के एक पुत्र हुआ, जिसका नाम घटोत्कच रक्खा गया।

इसके बाद पांडव लोग माता के साथ जोगी बनकर मत्स्य, त्रिगर्त, पांचाल आदि कई देशों में घूमते और वनों में शिकार खेलते हुए फिरने लगे। चलते-चलते जब कुंती थक जाती थीं, तब युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन आदि उनको बारी-बारी से कंधे पर बिठा लिया करते थे। इस प्रकार अपनी पूज्य माता को वे रास्ते का दुःख कभी नहीं होने देते थे। माता का ख़याल रखते हुए भी उनका लिखना-पढ़ना बराबर होता रहता था। युधिष्ठिर और उनके भाई उपनिषद् आदि अच्छी-अच्छी पुस्तकें पढ़कर समय बिताते थे।

इस प्रकार जब पांडव लोग वन में विचरते थे, उस समय व्यासजी उनसे मिलने को आए। व्यासजी को देखकर कुंती और पाँचो भाइयों ने प्रणाम किया, और हाथ जोड़कर खड़े हो गए। व्यासजी सब बातें जानते थे, उन्हें धृतराष्ट्र तथा दुर्योधन की ये खोटी चालें मालूम थीं। इसी-लिये उन्होंने धृतराष्ट्र और दुर्योधन के बुरे कामों का बखान करते हुए बहुत दुःख प्रकट किया। इसके बाद वे पांडवों को धीरज देते हुए बोले—"प्यारे पुत्रो, मैं तुम्हारी भलाई में सदा लगा रहूँगा। तुम किसी बात की चिंता मत करो। अब तुम लोग पास के एक नगर में जाकर रहने लगो।"

यह कहकर व्यासजी उन्हें 'एकचक्रा' नाम के शहर में ले गए। वहाँ उन्होंने कुंती को धीरज देते हुए कहा—"तुम्हारा यह बड़ा बेटा युधिष्ठिर बड़ा धर्मात्मा है। यह अर्जुन की सहायता से सारी पृथ्वी को जीतकर राजाओं पर राज करेगा, और राजसूय तथा अश्वमेध आदि यज्ञों को करके जगत् में ख़ूब बड़ाई पाएगा। तुम मेरी इन बातों को बिलकुल सच समझो, इसमें एक भी बात झूठी नहीं हो सकती।"

इस प्रकार कुंती को विश्वास दिलाकर व्यासजी ने उनको एक ब्राह्मण के घर में ठहरा दिया, और युधिष्ठिर से बोले—"धर्मराज, तुम माता और भाइयों के साथ यहाँ एक महीने तक सुख से रहो। मैं फिर यहाँ पर आऊँगा।" पांडवों ने 'जो आज्ञा' कहकर उनकी आज्ञा मंजूर की, और आराम से ब्राह्मण के घर रहने लगे।

पांडवों के उत्तम व्यवहार से ब्राह्मण और उनमें बड़ी गहरी दोस्ती हो गई। व्यासजी की आज्ञा के अनुसार उनको एक ही महीना ब्राह्मण के घर रहना था। पर दोस्ती के कारण वे कुछ दिन यहाँ और रहने की इच्छा करने लगे। वे यहाँ पर अपना अधिक समय नदियाँ, तालाब, जंगल और गाँवों के देखने तथा भिक्षा माँगने में बिताते थे, और जो कुछ भिक्षा में मिलता, उसे शाम को घर लौटकर माता को देते थे। मातेश्वरी कुंती उसके हिस्से करती थीं। वे सब चीज़ों का आधा हिस्सा भीम के लिये रखती थीं, और आधे के पाँच हिस्से करती थीं। उनमें से चार हिस्से चारो पुत्रों को देकर एक हिस्सा अपने लिये रखती थीं।

इस नगर के पास बक नाम का एक राक्षस रहता था। उसके ऊधम से सब लोग व्याकुल थे। उसके खाने के लिये प्रति दिन बारी-बारी से एक आदमी नगर से दिया जाता था। पांडव जिस ब्राह्मण के घर रहते थे, एक दिन उसके घर के किसी आदमी के जाने की बारी आई। उस दिन और सब भाइ भिक्षा माँगने बाहर गए थे, अकेले भीम ही घर पर थे। ब्राह्मण के घर के भीतर से रोने की आवाज़ कुंती के कानों में आई। वे जल्दी ही वहाँ गईं। जाकर देखा कि ब्राह्मण ब्राह्मणी से कह रहा है—"मैं ही आज राक्षस के पास भोजन लेकर जाऊँगा।" उत्तर में ब्राह्मणी कह रही है—"आपके घर न रहने से बाल-बच्चों को कौन

सम्हालेगा ? इसलिये आज मैं ही राक्षस का भोजन लेकर जाऊँगी।"

इस प्रकार दोनों की बातें सुनकर कुंती का मन दुःखी हो उठा। वे बोलीं—"तुम क्यों रोते और इतना दुःख करते हो। मैं अपने पाँचों पुत्रों में से एक पुत्र को आज बक के पास भेज दूँगी। जिसको भेजूँगी, वही राक्षस को मार डालेगा, यह मेरा पक्का विश्वास है। मैं उसके ज़ोर को अच्छी तरह जानती हूँ। तुम लोग चिंता न करो। तुमको किसी प्रकार का डर नहीं है।" यह बात कहकर दयामयी कुंती चली आईं। आकर उन्होंने सारा हाल भीमसेन से कहा। भीम माता की आज्ञा से राक्षस का भोजन लेकर उसके पास गए, और ज़ोर से उसे पुकारा। भीम की आवाज़ सुनकर राक्षस बाहर निकला। बलवान् भीमसेन उसके सामने ही भोजन करने लगे। यह देख राक्षस बहुत गुस्से में हुआ। उसने कई पेड़ उखाड़-उखाड़कर भीमसेन की पीठ पर मारे। पर भीम को ज़रा भी तकलीफ़ नहीं हुई और उन्होंने अपनी भुजाओं के बल से राक्षस को धरती पर पटक दिया। और उसकी पीठ पर चढ़कर अपने घुटनों से उसकी पीठ मसल डाली। राक्षस चिल्लाते-चिल्लाते लोहू की उल्टी करने लगा, और थोड़ी देर में मर गया। तबसे 'एकचक्रा' गाँव के आदमी निडर होकर सुख से रहने लगे।

राक्षस के मर जाने पर पांडव लोग उस ब्राह्मण के घर

रहकर वेद, पुराण और उपनिषद् आदि पुस्तकों के पढ़ने में समय बिताने लगे। एक बार एक ब्राह्मण उस ब्राह्मण के यहाँ पाहुना होकर आया। ब्राह्मण ने उसे बड़े आदर के साथ ठहराया। पांडव भी अपनी माता के साथ उसकी सेवा में लगे। पाहुना उनकी सेवा से ख़ूब प्रसन्न होकर कई देशों और तीर्थ-स्थानों की बातें कहने लगा। इससे पांडवों को बड़ा आनंद हुआ। अंत में पाहुना बोला—"पांचाल नगर में राजा द्रुपद ने अपनी रूपवती लड़की 'कृष्णा' के लिये बड़े ठाट-बाट से स्वयंवर रचा है।"

कुंती ब्राह्मण से यह बात सुनकर युधिष्ठिर से बोलीं—"प्यारे पुत्रो, चलो हम लोग चलकर उसी जगह रहें। इस ब्राह्मण के घर हम बहुत दिनों तक रह चुके हैं। अब यहाँ रहना ठीक नहीं है। सुना है, पांचाल-देश के आदमी भिक्षा माँगनेवाले भिक्षुक को कभी ख़ाली नहीं लौटाते हैं। इसके सिवा वहाँ के राजा भी बड़े अच्छे और धर्मवान् हैं।"

माताकी बात सुनकर युधिष्ठिर बोले—"माता, आपने जो कहा है, हमारे लिये वही भलाई करनेवाला है। उचित है कि भाइयों की भी सलाह ले ली जाय।"

इसके बाद कुंती ने भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव से भी राय ली। सब लोग माता की बात सुनकर बोले—"माता, आप जो चाहें, हम वही करने को तैयार हैं। आपकी आज्ञा का पालन करना हमारा धर्म है।" पुत्रों की ऐसी बातें सुनकर

कुंती बहुत ख़ुश हुईं। इसके बाद माता और पाँचों बेटे, ब्राह्मण का अहसान मानते हुए, पांचाल देश को चले।

मार्ग में कितने ही पर्वत, कितनी ही तेज़ नदियाँ, कितने ही जंगल और कितने ही बड़े तालाब, और कितने ही देश आए। पांडव लोग सबको पार करते हुए शाम को 'सोमप्रयाग' नाम के तीर्थ में पहुँचे। यहाँ गंगा के किनारे इन्होंने डेरा लगाया। उस समय गंगाजी के जल में एक गंधर्व जल-विहार कर रहा था। अर्जुन को देखकर वह कूदता हुआ बोला—"तुम क्यों इस राक्षसी समय में यहाँ आए हो ? क्या तुम जानते नहीं कि मैं इस समय जल-विहार कर रहा हूँ। यह देखो, सामने घना जंगल है, वहाँ राक्षस लोग रहते हैं। मैं उनकी सहायता से अभी तुम्हारे टुकड़े-टुकड़े कर डालूँगा। दूर क्यों जाते हो, आओ, मेरे पास आओ।"

बलवान् अर्जुन उस गंधर्व के पास जाकर बोले—"अरे दुष्ट, तू हमें क्या मारेगा, पहले अपनी ख़ैर मना।" यह कहकर अर्जुन उसको मारने के लिये तैयार हुए। गंधर्व समझ गया कि यह मुझे मार डालेगा। कुंभनदी नाम की उसकी स्त्री वहाँ मौजूद थी। उसने जब देखा कि अर्जुन के हाथ से मेरे पति अभी मारे जानेवाले हैं, तो उसने बड़े दुःख के साथ हाथ जोड़-कर धर्मराज युधिष्ठिर से प्रार्थना की—"महाराज, मेरी बारंबार आपसे बिनती है। आप दयाकर मेरे पति के प्राण बचाइए। उनसे भूल हुई जो उन्होंने आपका सामना किया। अब आप उनके अपराधों को क्षमा कीजिए।"

स्त्री की दुःख-भरी प्रार्थना सुनकर धर्मराज युधिष्ठिर को दया आ गई। वे अर्जुन से बोले—"भाई अर्जुन, इसे जाने दो। जैसे के साथ तैसा नहीं होना चाहिए। मनुष्यों को चाहिए कि दूसरों के क़ुसूर को माफ़ कर दें। इसलिये इस स्त्री पर दया करके इसके पति को छोड़ दो।"

बड़े भाई की आज्ञा पाकर अर्जुन ने फ़ौरन् उस गंधर्व को छोड़ दिया।

चौथा अध्याय

चलते-चलते कुंती और पाँचो पुत्र द्रुपद-राज्य में पहुँचे। वहाँ पहुँचकर उन्होंने ब्राह्मण का रूप बनाकर एक कुम्हार के घर मुक़ाम किया, और भीख माँगकर अपना पेट भरने लगे। द्रुपद-राजा ने अपनी लड़की के स्वयंवर के लिये लक्ष्य-भेद तैयार किया था। यह लक्ष्य-भेद इस तरह का था कि बहुत ऊँचे पर एक मछली रखवाई गई थी, और उसके नीचे एक बराबर घूमनेवाला चक्र था। प्रतिज्ञा यह थी कि जो कोई धनुष में तीर चढ़ाकर उस चक्र को पार करते हुए ऊपर की मछली की आँख तीर से वेध सकेगा, उसी को मैं अपनी रूपवती कन्या दूँगा। यह बात चारो तरफ़ फैल गई। द्रौपदी को पाने के लिये देश-देश के राजा लोग पांचाल नगर में आने लगे।

नगर के बीच बराबर ज़मीन में एक बहुत अच्छा सभा-भवन बनाया गया। इस भवन में सब राजा लोग अच्छे-अच्छे कपड़े और गहने पहनकर अपनी-अपनी बैठकों पर बैठ गए। कई तरह के बाजे बजने लगे। नाचनेवाली स्त्रियाँ नाचने लगीं। चंद्र-वंश के पुरोहित आग में घी डाल-डालकर मंत्र बोलने लगे। इसी समय द्रुपद-राजा के पुत्र धृष्टद्युम्न अपनी बहन द्रौपदी को लेकर सभा में आए और ज़ोर की आवाज़ से

उन्होंने कहा—"हे राजा लोगो! यह जो ऊपर कल लगी हुई है, इसके छेद में से पाँच तीर चलाकर जो कोई निशाने को मार सकेगा, वही मेरी बहन कृष्णा का पति हो सकेगा।"

धृष्टद्युम्न की बात सुनकर शिशुपाल, जरासंध, काशीराज, विराट्, दुर्योधन आदि राजा धनुष चढ़ाकर निशाने को मारने के लिये आगे बढ़े। बहुत कोशिश की, मगर सब की कोशिश यों ही गई। पांडव लोग भी इस महासभा में ब्राह्मण का वेष बनाकर आए थे। जब कोई राजा मछली का वेध न कर सका, तो अंत में अर्जुन निशाना मारने को आगे बढ़े। उनको ब्राह्मण जान और ब्राह्मण की ऐसी हिम्मत देखकर सभा के सब लोग उनकी हँसी करने लगे। परंतु अर्जुन ने निशाने को फ़ौरन् ही मार दिया। सभा के सब लोग अचंभे में होकर अर्जुन की तरफ़ देखते रह गए। चारो तरफ़ हल्ला मच गया। बाजे बजने लगे। बाजों की आवाज़ से सब लोग मस्त हो गए। द्रौपदी अपनी सखियों के साथ आगे बढ़ी, और बड़ी ख़ुशी के साथ उसने अर्जुन के गले में वरमाला पहना दी।

यह देखकर राजा लोग बहुत बिगड़े। राजाओं के रहते राजा द्रुपद एक मामूली ब्राह्मण के लड़के को अपनी सुंदरी कन्या सौंपे, यह उनको अच्छा न लगा। इसलिये वे द्रुपद-राजा को मारने के लिये तैयार हुए। द्रुपद-राजा डरकर पांडवों की शरण में आए। तब भीम ने एक सूखे पेड़ को उखाड़कर

शत्रुओं पर धावा किया। उनके ज़ोर के धावे से राजा लोग घबरा गए। इधर अर्जुन ने भी तीरों को चलाकर सारे ओं को सुस्त कर दिया। श्रीकृष्ण इस सभा में मौजूद थे। उन्हों ने गुप्त रूपवाले पांडवों को पहचान लिया। वे बलदेव से बोले—"भाई बलराम, यह काम ज़रूर ही अर्जुन का है। उनके सिवा दूसरा इस काम को कभी नहीं कर सकता।"

सूर्य डूब रहा था। थोड़ी देर में चारो ओर घना अँधेरा छा गया। यह देखकर कुंती घबरा उठीं कि क्या कारण है जो मेरे लड़के अब तक नहीं आए। उनके मन में बहुत-सी चिंताएँ होने लगीं। सबसे पहले दुर्योधन के बुरे बर्ताव की बात उनके मन में पैदा हुई। शायद दुष्ट दुर्योधन ने किसी तरकीब से मेरे पुत्रों को मार डाला हो, या किसी और तरह से वे मारे गए हों। इन सब चिंताओं से उनका मन बहुत घबराने लाग। इसी समय पाँचो भाई द्रौपदी को लेकर आए और द्वार के बाहर से उन्होंने माता को पुकारा—"मा, आज भिक्षा में हमें बहुत सुंदर चीज़ मिली है।"

कुंती ने सोचा कि मेरे पुत्र कोई खाने की चीज़ लाए होंगे। इसलिये वे बोलीं—"तुम्हें जो चीज़ मिली है, उसे पाँचो भाई काम में लाओ।" कुंती घर के भीतर थीं, उन्होंने द्रौपदी को देखा नहीं था, इसी से ऐसा कह दिया। बाहर आकर जब उन्होंने द्रौपदी को देखा, तो बहुत पछताने लगीं—"हाय! मैंने बड़ा ही बुरा कर डाला, जो विना देखे ही ऐसा कह दिया।

भला एक स्त्री को पाँचो भाई कैसे काम में ला सकते हैं। मैंने तो कोई चीज़ जानी थी। हाय ! मुझसे बड़ी भूल हुई। अधर्म की बात हो गई। अब मेरे पुत्र मेरी आज्ञा को कैसे पलट सकते हैं। वे जानते हैं कि माता की आज्ञा न मानने से बड़ा पाप लगता है।"

इस प्रकार कुंती ने बहुत पछतावा किया। पीछे वे द्रौपदी का हाथ पकड़कर युधिष्ठिर से बोलीं—"ये द्रुपद-राजा की कन्या हैं, मैंने विना जाने तुमको आज्ञा दे दी है। अब मेरा कहना झूठा नहीं हो सकता। इसलिये तुम सब मिलकर इसको काम में लाओ। इससे द्रौपदी और तुमको कोई पाप नहीं लगेगा।" माता की बात सुनकर धीरजवान् युधिष्ठिर ने भाइयों से सलाह की और माता को संतोष दिलाया।

इधर द्रुपद-राजा इस चिंता में हो गए कि मेरी प्यारी लड़की को न-जाने कौन दरिद्र ब्राह्मण ले गए हैं, जिन्हें कोई जानता भी नहीं। वे बहुत घबराए। उन्होंने यह जानना चाहा कि ये ब्राह्मण हैं कौन। इसी इरादे से उन्होंने धृष्टद्युम्न को उनके पीछे भेजा। धृष्टद्युम्न गए और उन्होंने पांडवों का सारा हाल पिताजी से आकर कह दिया। यह सुनकर द्रुपद-राजा बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने एक ब्राह्मण को पांडवों के लाने के लिये भेजा, और बड़े आनंद से द्रौपदी का अर्जुन के साथ विवाह कर देने को तैयार हुए।

पांडव लोग आए। अर्जुन ने यह बात उठाई कि बड़े भाई

के कुँवारे रहते मैं इस काम के लिये कैसे तैयार हो सकता हूँ। अर्जुन की बात सुनकर सभी भाइयों ने द्रौपदी के साथ विवाह करना मंजूर न किया। द्रौपदी के पिता दुनिया के डर से किस तरह इस काम को करें, यह चिंता उनको घबराने लगी। इसी समय सत्यवती के पुत्र व्यासजी वहाँ आए, और उन्होंने राजा की सारी चिंता दूर कर दी। व्यासजी बोले—"राजन्, आप चिंता न करें, द्रौपदी ने पहले जन्म में महादेव से पाँच बार 'पति देहि' कहकर भिक्षा माँगी थी, और महादेव ने भी इन्हें पाँच पति मिलने का आशीर्वाद दिया था। अब वही बात सच हो रही है।"

व्यासजी की यह बात सुनकर द्रुपद-राजा का भय जाता रहा। उन्हें किसी बात का संदेह नहीं रहा। इसलिये उन्होंने बड़ीधूम-धाम से द्रौपदी का विवाह पाँचो पांडवों के साथ कर दिया। द्रौपदी को महादेवजी का वरदान था। इसलिये वह पाँच पति पाकर भी धर्मवान् बनी रही। वरदान की महिमा बड़ी भारी होती है। इसी से द्रौपदी आज पाँच पतियों की स्त्री होकर भी भारत की सती नारियों में एक मानी जाती है।

इधर 'लाख के घर' से पांडवों का बच जाना, उनका छुप-कर रहना और फिर द्रौपदी के साथ विवाह करना, ये सब बातें धृतराष्ट्र को मालूम हुईं। वे बाहर से बहुत प्रसन्न हुए, और बड़ी ख़ुशी के साथ उन्होंने द्रौपदी-समेत पांडवों को लाने

के लिये एक आदमी भेजा। पांडवों की भलाई चाहनेवाले विदुर पांचाल नगर में आए और वहाँ से उन्हें हस्तिनापुर में ले आए। पांडवों के हस्तिनापुर आने पर सारे नगर के लोग इकट्ठे हुए, और धर्मराज युधिष्ठिर से कहने लगे—"आपके पधारने से आज हम लोगों को बड़ी ख़ुशी हो रही है। आज हम जितना दान और जितना होम करें, उतना ही हमारे लिये थोड़ा है। हमारे लिये इससे बढ़कर और क्या आनंद होगा कि इतने दिन के बिछुड़े हुए धर्मराज युधिष्ठिर आज अपने देश में पधारे हैं।" इस तरह की बातें कहते हुए सभी लोगों ने द्रौपदी और पाँचों भाइयों को ख़ूब जी भरकर देखा। इसके बाद ख़ूब प्रसन्न होते हुए सब आदमी अपने-अपने घर गए।

द्रौपदी और पाँचो भाई धृतराष्ट्र के पाँव छूकर राजमहल में गए। कुछ दिनों के बाद पाँचो भाइयों को बुलाकर धृतराष्ट्र ने कहा—"बेटा युधिष्ठिर, तुम और तुम्हारे भाई मेरी एक बात सुनो। तुम्हारे लिये मैंने एक बहुत ही अच्छी तरकीब निकाली है। तुम लोग राज्य का आधा हिस्सा लेकर यदि खांडवप्रस्थ में रहो, तो दुर्योधन के साथ तुम्हारा कोई झगड़ा नहीं रहेगा। उस जगह तुम लोग सुख से रह सकोगे और अर्जुन तुमको कई तरह के वैरियों से बचाता रहेगा। तुम लोगों के लिये मुझको यह तरकीब बहुत ही अच्छी मालूम होती है।"

धर्मराज युधिष्ठिर और उनके भाइयों ने धृतराष्ट्र की बात

ख़ुशी से मान ली। वे फ़ौरन् खांडवप्रस्थ जाने को तैयार हो गए। इसके बाद एक दिन धृतराष्ट्र के पैर छूकर वे द्रौपदी के साथ चल दिए।

पांडवों के पहुँच जाने पर उनके प्यारे मित्र श्रीकृष्ण खांडव-प्रस्थ में आए। युधिष्ठिर अपने भाइयों के साथ, श्रीकृष्ण की सहायता पाकर खांडवप्रस्थ की उन्नति करने में लगे। उन्होंने नगर के चारों तरफ़ खाई खुदवाई, और वैरियों से शहर को बचाने के लिये मज़बूत कोट बनवाया। लंबी-चौड़ी मनोहर सड़कें तैयार हुईं। जगह-जगह साफ़ जल की नदियाँ निकाली गईं। कई तरह के पेड़ बाग़ों में लगाए गए जिससे सारे बाग़ों की शोभा ख़ूब बढ़ गई। थोड़े ही दिनों में खांडवप्रस्थ इंद्रपुरी के समान हो गया। इसीलिये धर्मराज युधिष्ठिर का खांडवप्रस्थ "इंद्रप्रस्थ" के नाम से प्रसिद्ध हो गया।

धर्मराज युधिष्ठिर खांडवप्रस्थ के राजा हुए। उनके धर्म-राज्य में बड़े-बड़े सेठ-साहूकार, होशियार कारीगर और बड़े-बड़े पंडित आकर सुख से रहने लगे। युधिष्ठिर अपनी प्रजा को आराम पहुँचाने में लग गए। उनके राज्य में प्रजा सुख से रहने लगी। किसी को किसी बात की तकलीफ़ नहीं होती थी। राज्य में चोरों का डर बिलकुल नहीं था, युधिष्ठिर सच्चे राजा थे। वे बुरे आदमियों के लिये काल के समान थे, और अच्छे आदमियों के लिये बड़े अच्छे दोस्त। प्रजा उनके गुणों से प्रसन्न थी और सदा उनकी आज्ञा का पालन करने में तैयार रहती

थी। चारो भाई भी उनको नर-रूप में नारायण मानते, और सदा उनकी आज्ञा का पालन किया करते थे।

जिस समय महाराज युधिष्ठिर इस प्रकार राज्य कर रहे थे, एक बार देवर्षि नारद वहाँ आए। उनके आने से पांडवों ने प्रसन्न हो उनके चरणों में प्रणाम किया। नारदजी युधिष्ठिर से बोले—"आप पाँचो भाइयों को एक स्त्री मिली है, यह मुझे मालूम हुआ है। लेकिन इससे कोई झगड़ा न खड़ा हो जाय, इसका उपाय करते रहना।" महर्षि की यह बात सुनकर पाँचो भाइयों ने तय किया कि हम पाँचो में से जब एक भाई द्रौपदी के पास रहे, तब दूसरा भाई वहाँ नहीं जा सकेगा। जो इस नियम को तोड़ेगा, उसे बारह वर्ष तक वन में रहना पड़ेगा।" नारद मुनि पांडवों की यह प्रतिज्ञा सुनकर प्रसन्न हुए, और अपने धाम को चले गए।

यह नियम तो हो गया। पर अर्जुन इसे नहीं निबाह सके। बात यह हुई कि एक बार महाराज युधिष्ठिर हथियारों के घर में द्रौपदी के साथ एक पलँग पर बैठे थे, उसी समय एक आदमी चोरों से डरकर अर्जुन के पास आया। अर्जुन को चिंता हुई कि मैं इसे किस तरह अभय करूँ। अंत में वे हथियार लेने को घर में गए। वहाँ उन्होंने बड़े भाई को द्रौपदी के साथ एक पलंग पर बैठे हुए देखा। नियम टूट गया। यह समझकर अर्जुन बारह वर्ष के लिये जंगल में जाने को तैयार हुए। युधिष्ठिर उनको बार-बार रोकने लगे, किंतु अर्जन ने नहीं माना वे

बोले—"महाराज, आपका हृदय भाई के प्यार से भरा हुआ है। यह मैं अच्छी तरह जानता हूँ; पर मेरी आपसे हाथ जोड़कर प्रार्थना है कि आप इस प्यार के कारण मुझे न रोकें।"

यह कहकर अर्जुन खांडवप्रस्थ को छोड़कर चल दिए। वे बारह वर्ष तक कई जगह घूमे। मणिपुर भी गए। वहाँ चित्रांगदा से विवाह किया। उससे बभ्रुवाहन नाम का एक पुत्र हुआ। इसके बाद अर्जुन प्रभास-तीर्थ में गए। वहाँ श्रीकृष्ण से उनकी मुलाक़ात हुई। श्रीकृष्ण ने अर्जुन के बल और उनके गुणों की प्रशंसा की। यहाँ रहते-रहते अर्जुन का श्रीकृष्ण की बहन सुभद्रा से प्रेम हो गया। श्रीकृष्ण इसे समझ गए। उन्होंने अर्जुन से कहा—"मेरी बहन स्वयंवर में न-जाने किसको अपना पति चुने, कह नहीं सकता। इसलिये मैं आपको एक उपाय बताता हूँ। यदि वह हो जाय, तो मन की बात पूरी हो जाय। उपाय यही है कि आप राजपूतों की रीति के अनुसार सुभद्रा को लेकर यहाँ से चल दें।"

उस समय अर्जुन को जंगल में रहते हुए १२ वर्ष पूरे हो गए थे। उनको अपने घर लौटना भी था। इसलिये वे सुभद्रा को रथ में बिठाकर इंद्रप्रस्थ ले आए। कुछ दिनों के बाद सुभद्रा के पेट से एक बहुत बलवान् पुत्र पैदा हुआ, जिसका नाम 'अभिमन्यु' रक्खा गया।

पाँचवाँ अध्याय

खांडव-वन जलने के समय अर्जुन ने 'मय' नाम के एक दानव को बचाया था। 'मय' बड़ा कारीगर था। वह अहसान जताने के लिये खांडवप्रस्थ में अर्जुन के पास आया, और बोला—"आपने मुझे बचाया है, यह अहसान मैं जन्म-भर नहीं भूलूँगा। इसका बदला मैं आपको क्या दे सकता हूँ? हाँ, कारीगरी का कोई काम हो, तो मुझसे लीजिए। उस समय देवकी के पुत्र श्रीकृष्ण वहाँ मौजूद थे। अर्जुन मय-दानव की बात सुनकर बोले—"श्रीकृष्ण जो कहेंगे, उसीसे मैं प्रसन्न होऊँगा।" मय ने हाथ जोड़कर श्रीकृष्ण से प्रार्थना की। श्रीकृष्ण बोले—"यदि तुम मेरे कहने के अनुसार काम करना चाहते हो, तो महाराज युधिष्ठिर के लिये एक ऐसा घर बनाओ, जिसे देखकर लोग अचरज में हो जायँ।"

मय ने ऐसा ही किया। वह अनेक स्थानों से कई चीज़ें इकट्ठा कर खांडवप्रस्थ में एक सभा-भवन बनाने लगा। यह सभा-मंडप चारों ओर से पाँच हज़ार हाथ चौड़ा बनाया गया। उसके नीचे कई प्रकार की कारीगरी के पत्थर लगाए गए। सैकड़ों खंभों में मोती-मानिक बिठाए गए। उनके उजाले से सूरज का उजाला भी फीका मालूम होने लगा। मय ने इस सभा में एक अजीब तालाब भी बनाया, जिसमें हंस, सारस,

चकवा-चकवी आदि जल के जीव तैरते थे, जिन्हें देखकर लोगों को बड़ा आनंद होता था। तालाब के चारो ओर कई जाति के पेड़ लगाए गए। उनके फूलों की सुगंध लेकर हवा सबके मन को प्रसन्न करने लगी। इस तरह बड़ी मिहनत के साथ मयदानव ने १४ महीने में इस अजीब सभा-भवन को बनाकर तैयार किया। इसके बाद वह युधिष्ठिर के पास हाज़िर होकर बोला—"महाराज, सभा-भवन तैयार हो गया है।"

धर्मराज युधिष्ठिर यह समाचार पाकर सभा-मंडप में आए। उन्होंने सभा-भवन में आकर सबके पहले देवताओं की पूजा की। उस समय कई बाजे बजने लगे। उनकी मीठी आवाज़ सबको प्यारी मालूम होने लगी। पूजा करके धर्मराज युधिष्ठिर सभा में इंद्र की तरह चारो ओर घूमने लगे। बड़े-बड़े ऋषि और राजा लोग पांडवों के साथ बैठकर सभा की शोभा देखने लगे। इस सभा में जो लोग आए थे, वे सभी धर्मराज युधिष्ठिर के पास जाकर देवताओं की तरह उनकी बड़ाई करने लगे। इस अवसर पर धर्मराज युधिष्ठिर ने हज़ारों ब्राह्मणों को धन, जेवर, हीरा, मोती, अन्न, कपड़ा देकर बिदा किया।

इसी समय वहाँ नारदजी आए। धर्मराज युधिष्ठिर ने भाइयों-समेत उनको प्रणाम किया, और उन्हें अच्छे आसन पर बिठाया। नारदजी मयदानव के बनाए सभा-मंडप की शोभा देखकर बोले—"मैंने पृथ्वी-भर में ऐसी अजीब सभा कहीं नहीं देखी है।

जब आपने ऐसी सुंदर सभा बनवाई है, तो आप राजसूय-यज्ञ करके संसार में अपना नाम अमर कीजिए।" यह कहकर नारदजी वहाँ से चले गए।

नारदजी के चले जाने के बाद युधिष्ठिर ने राजसूय-यज्ञ के बारे में भाइयों से सलाह की। श्रीकृष्ण उनकी बहुत भलाई चाहनेवाले थे। इसलिये धर्मराज युधिष्ठिर उनको द्वारका से लाए। श्रीकृष्ण के आने पर पाँचों भाइयों ने उनका अच्छा आदर किया; और उन्हें सुंदर आसन पर बिठाया। इसके बाद युधिष्ठिर ने कहा—"श्रीकृष्ण, आप हमारा भला चाहनेवाले हैं, आपको एक सलाह करने के लिये यहाँ बुलाया है। नारदजी यहाँ आए थे। वे इस नए सभा-भवन को देखकर बहुत ख़ुश हुए, और मुझसे राजसूय-यज्ञ करने को कह गए हैं। अब आपकी जैसी राय हो, उसे कहकर हम लोगों को सुखी कीजिए।"

धर्मराज की बात सुनकर श्रीकृष्ण बोले—"धर्मराज, आपके समान धर्मात्मा और गुणी राजा इस संसार में और कौन है। आप सचमुच राजसूय-यज्ञ करने के योग्य हैं। परंतु आपसे मेरी एक प्रार्थना है। इस यज्ञ में भारत के सब राजा आवें, ऐसा प्रबंध करना पड़ेगा। मगध देश का राजा जरासंध बड़ा ही दुष्ट और बलवान् है। उसने कई राजाओं का राज छीन-कर उनको क़ैद कर रक्खा है। सुना है, वह दुष्ट उन बंदी राजाओं का देवताओं को बलिदान करेगा। मेरा पूरा विश्वास है, वह दुष्ट आपके यज्ञ को भंग करेगा और आपको कष्ट

पहुँचाएगा। इसलिये पहले उसे मारकर क़ैदी राजाओं को छुड़ाना जरूरी है। यदि आप यज्ञ की कुशल चाहते हैं, तो पहले उन राजाओं को छुड़वाना उचित है।"

महाराज युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण के इन वचनों को बहुत ठीक समझा। उन्होंने श्रीकृष्ण से पूछा कि "इसमें क्या करना चाहिए?" श्रीकृष्ण बोले—"भीम और अर्जुन को मेरे साथ भेजिए। हम तीनो वहाँ जाकर दुष्ट जरासंध को मारेंगे। और क़ैदी राजाओं को छुड़ा देंगे। यह मेरा पूरा विश्वास है।" श्रीकृष्ण की सलाह ठीक समझकर धर्मराज युधिष्ठिर ने भीम और अर्जुन को श्रीकृष्ण के साथ मगध देश, जाने की आज्ञा दी।

भीम और अर्जुन को साथ लेकर श्रीकृष्ण फ़ौरन् हो वहाँ से चले। अनेक बस्तियों, जंगलों और पहाड़ों को पार करते हुए वे मगध-राज में पहुँचे। राज द्वार में पहुँचकर उन्होंने अपने आने की ख़बर राजा से करवाई। मगध का राजा जरासंध उनसे मिलने को आया, और बड़े सम्मान के साथ उनको अच्छे आसन पर बैठाया। कुशल पूछने के बाद जरासंध ने उनके आने का कारण पूछा। श्रीकृष्ण बोले—"आपका अत्याचार अब बहुत बढ़ गया है। आप क़ैदी राजाओं को छोड़ दीजिए।"

जरासंध को यह बात मंज़ूर नहीं हुई। इसलिये जरासंध और भीमका मल्ल-युद्ध ठहरा। बहुत-से देखनेवाले इकट्ठे

हुए। दोनो का युद्ध होने लगा। दोनो की गर्जन से चारो दिशाएँ गूँज उठीं। चौदह दिन के लगातार युद्ध के बाद बलवान् भीम ने जरासंध को मार डाला। जरासंध के मार जाने पर श्रीकृष्ण ने क़ैदी राजाओं को छोड़ दिया। राजा लोग श्रीकृष्ण के चरणों में प्रणाम कर उनके पास खड़े हुए। श्रीकृष्ण ने सब से कहा—"राजाओ, महाराज युधिष्ठिर ने राजसूय-यज्ञ करने का विचार किया है, आप लोग उनके हितैषी बनकर उनकी इस यज्ञ में सहायता कीजिए। यही मेरी आपसे प्रार्थना है।"

श्रीकृष्ण की यह बात सुनकर सब राजा ख़ुश हुए। उन्होंने इस यज्ञ के काम में शामिल होना और सहायता करना स्वीकार किया। अंत में श्रीकृष्ण ने जरासंध के पुत्र सहदेव को पिता के सिंहासन पर बिठाया। सहदेव ने भी श्रीकृष्ण के चरणों की वंदना कर राजसूय यज्ञ के लिये बहुत-सा धन दिया। इस प्रकार छूटे हुए राजा और मगध के नए राजा सहदेव, सब महाराज युधिष्ठिर के वंश में हो गए।

इन सब कामों को कर श्रीकृष्ण, भीम और अर्जुन के साथ, रथ में बैठकर शंखध्वनि करते हुए इंद्रप्रस्थ में आए। उनको देखकर सब बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने धर्मराज के चरणों में प्रणाम किया, और सारा हाल कह सुनाया। युधिष्ठिर बड़े प्रसन्न हुए। वे दोनो भाइयों और श्रीकृष्ण से गले लगकर ख़ूब मिले। श्रीकृष्ण ने जरासंध का रथ और धन-दौलत

युधिष्ठिर को देकर कहा—"महाराज, मगध का नया राजा सहदेव और छूटे हुए राजे, सब आपके अधिकार में आ गए हैं।"

इसके बाद युधिष्ठिर की आज्ञा से चारो भाई भारत के और-और राजाओं को जीतने के लिये बाहर निकले। अर्जुन उत्तर की तरफ़, भीम पूर्व की ओर, सहदेव दक्षिण की तरफ़ और नकुल पश्चिम दिशा को गए। सबने अपने बाहु-बल से आसाम, अयोध्या, लाहौर, पंजाब, सिंधु, कच्छ, गुजरात, आदि बहुत-से देशों को जीता, और उनको महाराज युधिष्ठिर के अधीन बनाया। इस जीत में पांडवों ने कई जगहों से कई तरह की चीज़ें और बहुत-सा धन प्राप्त किया, और उन सब को लेकर वे अपने देश में आए।

छठा अध्याय

जरासंध के मर जाने के बाद भारत के सभी वीरों ने महाराज युधिष्ठिर की अधीनता स्वीकार कर ली। धर्मराज युधिष्ठिर अब भारत के एकच्छत्र-सम्राट् होकर राज करने लगे। वे अब अपार धन-राशि के स्वामी हो गए। उन्होंने अपने ख़ज़ाने का हिसाब देखा। और राजसूय यज्ञ करने का विचार किया। सभी लोग उनसे आकर कहने लगे—"महाराज, अब राजसूय-यज्ञ करके अपनी इच्छा पूरी कीजिए, अब देर करने की ज़रूरत नहीं है।"

इस तरह राजसूय-यज्ञ के बारे में जब सब लोग महाराज से कह रहे थे, उसी समय श्रीकृष्ण बहुत-सा धन और बहुत-सी सेना के साथ इंद्रप्रस्थ में आ पहुँचे। पांडवों ने उनका बड़ा आदर किया। श्रीकृष्ण आसन पर बैठे। युधिष्ठिर बोले—"हे श्रीकृष्ण, केवल आप ही की कृपा से यह बड़ा भारी भारत देश मेरे अधीन हुआ, और मैं अपार धन का मालिक हुआ हूँ। अब सबकी इच्छा है कि मैं राजसूय-यज्ञ करूँ। आप मेरे परम हितैषी हैं, और हमारे हित के लिये हर बात में जी-जान से कोशिश करते हैं। इसलिये अब मैं आपकी आज्ञा पाने पर काम शुरू करूँगा।"

श्रीकृष्ण युधिष्ठिर की बड़ाई करते हुए बोले—"आप राजसूय-यज्ञ के सब तरह योग्य हैं। आपका यज्ञ पूरा होने पर हम लोग बड़े प्रसन्न होंगे।"

श्रीकृष्ण के वचन सुनकर धर्मराज युधिष्ठिर यज्ञ की तैयारी करने लगे। भारत के सभी राजाओं, बड़े आदमियों और ब्राह्मणों को न्योता देने के लिये चारो ओर आदमी भेजे गए। नकुल ने हस्तिनापुर जाकर भीष्मपितामह, धृतराष्ट्र, विदुर आदि कुटुंबियों को न्योता दिया। सब लोग यज्ञ की बात सुनकर कई मनुष्यों के साथ इंद्रप्रस्थ में आए। महाराज युधिष्ठिर ने सबका ठीक-ठीक सम्मान किया।

राजाओं के रहने के लिये बड़े-बड़े महल बनवाए गए। उन महलों को ऐसा सजाया गया कि देखनेवालों की आँखें चकाचौंध होने लगीं। सभी महलों में खाने-पीने की चीज़ें और दूसरी कई चीज़ें सजाई गईं। दूसरे मेहमानों के लिये भी हज़ारों घर तैयार कराए गए थे। यज्ञ की भूमि के निकट एक बड़ा चँदोवा ताना गया था। उसके नीचे जब सब लोग इकट्ठे होकर अपने-अपने आसनों पर विराजमान हुए, तब बाजेवालों ने सुंदर स्वरवाले बाजे बजाने शुरू किए, बाजों के सुर के साथ अच्छे-अच्छे गायक मधुर कंठ से गाने लगे। उनकी मीठी आवाज़ सभी के कानों में अमृत की वर्षा करने लगी।

पुरोहितों ने अच्छी घड़ी में गाजे-बाजे के साथ देव-पूजा कर युधिष्ठिर का तिलक किया। इस समय कंबोज, मगध,

अवंतिका आदि देशों के राजा उनके पास खड़े हुए। वेद जाननेवाले ब्राह्मणों ने सामवेद का गान किया। उनकी मीठी आवाज़ से सब लोग प्रसन्न हो गए। धर्मराज युधिष्ठिर ने इस समय एक-एक राजा को एक-एक काम सौंपा।

इस बड़े यज्ञ में भीष्मपितामह की आज्ञा से धर्मराज युधिष्ठिर ने पहले श्रीकृष्ण ही को यज्ञ का मालिक चुना था। इसलिये चेदी का राजा शिशुपाल गुस्से में होकर भीष्म और श्रीकृष्ण को गालियाँ बकने लगा। श्रीकृष्ण ने बड़ी धीरता से हँसते हुए उसकी सब गालियों को सुना; परंतु जब देखा कि शिशुपाल चुप न होकर बराबर गालियाँ देता ही जा रहा है, तो उन्होंने सुदर्शन-चक्र से उसका सिर काट डाला। यह देखकर जो राजा शिशुपाल की तरफ़ थे और यज्ञ में झगड़ा डालना चाहते थे, वे सब चुप हो गए। इसके बाद युधिष्ठिर ने शिशुपाल के पुत्र को चेदी का राजा बनाया।

यज्ञ बड़ी धूम-धाम से हो गया। यज्ञ के पूरा हो जाने पर युधिष्ठिर ने ख़ूब धन बाँटा। लाखों लोग यही कहने लगेकि—"ऐसा यज्ञ कभी किसी ने नहीं किया, और धर्मराज युधिष्ठिर की तरह आज तक भारत में कोई राजा भी नहीं हुआ।"

यज्ञ पूरा हो जाने पर दुर्योधन उस अजीब सभा-भवन की शोभा देखने को शकुनि के साथ वहीं रह गया। एक बार सभा में फिरते-फिरते वह मुकराने पत्थर की जगह में पहुँचा, और वहाँ पानी जानकर उसने अपने कपड़े ऊपर को उठाए। थोड़ी

दूर जाने पर वह गिर पड़ा, और बड़ा शरमाया। बाद को वहाँ से उठकर उदास मन से फिरने लगा। फिरते-फिरते जहाँ तालाब आया, जिसमें कमल खिल रहे थे, वहाँ उसने मुकराने की जगह समझी। वह तालाब के साफ़ जल में गिर गया। उसके कपड़े भीग गए। तब भीमसेन और उनके नौकर दुर्योधन को इस हालत में देखकर हँसने लगे। धर्मराज युधिष्ठिर ने तुरंत कपड़े मँगवाए। उनकी आज्ञा पाते ही नौकर फ़ौरन् कपड़े ले आए। इस तरह दुर्योधन सभा-भवन में फिरने लगा। उसका यह हाल देखकर भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव आदि सभी लोग हँसने लगे। दुर्योधन को केवल सभा-भवन की बराबर ज़मीन ही में ऐसा भ्रम हुआ था, यह बात नहीं है, बल्कि मुकराने पत्थर की दीवारों को भी उसने द्वार समझा, और ज्यों ही द्वार समझकर वह उधर जाने लगा, त्यों ही उसके माथे में दीवार की भारी चोट लगी, वह चक्कर खाकर ज़मीन पर गिर पड़ा। इस प्रकार सभा में जो चीज़ें मुकराने की होतीं, उन्हें वह असली चीज़ें समझता। यों बार-बार दुर्योधन की ख़ूब हँसी होने लगी। इस तरह सभा में अनादर होने से उसको बड़ा क्रोध आया। उसका शरीर काँपने लगा और लज्जा से मुख नीचा हो गया। परंतु उसने मन की बात मन ही में रक्खी, और धर्मराज युधिष्ठिर से बिदा लेकर शकुनि के साथ हस्तिनापुर को लौट आया।

सातवाँ अध्याय

दुष्ट दुर्योधन घर आकर पांडवों की बुराई के उपाय सोचने लगा। उसने अपने मंत्री शकुनि से सलाह की। शकुनि बोला—"महाराज, मैं जुए के खेल में बड़ा चतुर हूँ। यदि युधिष्ठिर को बुला उनके साथ दाँव बदकर जुआ खेला जाय, तो मैं उनको बार-बार हराकर आपकी इच्छा पूरी कर सकता हूँ।"

शकुनि की इन बातों से प्रसन्न होकर दुर्योधन धृतराष्ट्र के पास गया, और उनसे पांडवों के धन, राजसूय-यज्ञ, सभा-भवन और अपने अपमान की सब बातें कहीं। बोला—"इन सब बातों की याद करके मेरा हृदय जला जाता है। जब तक मैं उनको कमज़ोर नहीं कर दूँगा, तब तक मेरे जी को कभी शांति नहीं मिल सकेगी। आप युधिष्ठिर को पासों का जुआ खेलने के लिये बुलावें, और बाज़ी रखकर शकुनि के साथ खेलने को उनसे कहें। चतुर मामाजी उनको ज़रूर ही हरा देंगे।"

धृतराष्ट्र बोले—"बेटा, इस काम से भाई-भाई का नाता टूट जायगा और आगे कुरु-कुल का बहुत ही बुरा होगा।" परंतु दुर्योधन ने धृतराष्ट्र की इस बात पर ज़रा भी ध्यान नहीं दिया, और वह बार-बार वही बात कहने लगा। धृतराष्ट्र की बिलकुल

इच्छा नहीं थी, परंतु बेटे का इतना हठ देखकर उन्होंने लाचार होकर जुआ खेलने की आज्ञा दे दी।

धर्मवान् विदुर ने जब यह सुना, तो वे इस बुरे काम के लिये दुर्योधन को बार-बार मना करने लगे, परंतु दुर्योधन किसी की बात न मानकर इस बुरे काम को करने के लिये बिल्कुल तैयार हो गया। धृतराष्ट्र की आज्ञा से युधिष्ठिर के पास आदमी भेजा गया। जुआ खेलने का बुलावा लौटा देना राजपूतों के लिये लज्जा की बात होती है, यह सोचकर युधिष्ठिर चारो भाइयों के साथ हस्तिनापुर आए। शकुनि के साथ उनका जुआ शुरू हुआ। युधिष्ठिर के चारो भाई, और भीष्म, विदुर आदि कुरुवीर इस खेल को देखने लगे। शकुनि हर बार पाँसा फेंककर 'यह जीता'-'यह जीता' कहते हुए चिल्लाने लगा। युधिष्ठिर हारने लगे। जितनी चीज़ें उन्होंने दाँव पर लगाईं, धीरे-धीरे उन सबको हार गए। हाथी, घोड़े, धन, धान्य, गहने, कपड़े सभी उनके हार में चले गए। यहाँ तक कि धीरे-धीरे उन्होंने अपने शरीर, अपने भाई, और अंत में द्रौपदी को भी दाँव पर रख दिया। अपनी प्यारी द्रौपदी को बाज़ी पर लगाते देख दुष्ट दुर्योधन बड़ा ख़ुश हुआ। उसने द्रौपदी को लेने के लिये दुःशासन को इंद्रप्रस्थ भेजा। दुःशासन फ़ौरन् ही गया, और राजमहल में से द्रौपदी की चोटी पकड़कर उसे हस्तिनापुर ले आया। जब खेल की जगह में द्रौपदी आई, तो सब लोग बड़े दुःखी हुए। पांडव लोग इस

बुरे काम के लिये ग़ुस्से में हो गए। इधर दुःशासन द्रौपदी को सभा में लाकर ही नहीं माना, बल्कि सभा के बीच ही उसकी साड़ी खींचने लगा। सभी लोग इस बुरे काम की बुराई करने लगे, परंतु वह किसी के कहने से भी नहीं रुका। यह देख भीम बड़े ग़ुस्से में होकर बोल उठे—"आज मैं यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि एक दिन इस दुष्ट दुःशासन की छाती फाड़ूँगा, और उसका ख़ून पीकर इस बुरे काम का बदला लूँगा।"

इधर द्रौपदी अपनी लज्जा बचाने के लिये भगवान् श्रीकृष्ण को याद करने लगी। और श्रीकृष्ण ही की कृपा से वह अपनी लज्जा को बचा सकी। हुआ यह कि दुष्ट दुःशासन जितना ही द्रौपदी का चीर खींचने लगा, उतना ही वह चीर बढ़ने लगा। खींचते-खींचते द्रौपदी की साड़ी का ढेर लग गया, तो भी उसका पार नहीं आया। अंत में दुःशासन हार मानकर बैठ गया। उधर दुर्योधन सभा में द्रौपदी को 'दासी-दासी' कहकर चिल्लाने लगा। द्रौपदी को और भी लज्जित करने के लिये उसने उसे अपनी जाँघ दिखाई। द्रौपदी का ऐसा अपमान देखकर भीष्म और विदुर क्रोध में भर गए, और दुर्योधन को भला-बुरा कहने लगे। भीम अपनी गदा लेकर दुर्योधन को मारने के लिये उठे, लेकिन धर्मराज युधिष्ठिर ने उनको इस काम से रोक दिया। भीम बड़े भाई की आज्ञा मान गए, परंतु उन्होंने क्रोध से लाल आँखें कर गदा उठाते हुए कहा—"आज मैं यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि इसी गदा से दुर्योधन की जाँघ

तोड़ूँगा।" भीम की प्रतिज्ञा और क्रोध देखकर सभी लोग डर से काँपने लगे। सभी ने समझा कि भीम की प्रतिज्ञा झूठ नहीं होती है। वह किसी-न-किसी समय ज़रूर ही सच होगी।

द्रौपदी के चिल्लाने से धृतराष्ट्र को दया आ गई। उन्होंने दुष्टों के हाथ से उसको छुड़ाया, और वर माँगने को कहा। द्रौपदी लज्जा के साथ बोलीं—"आपसे मेरी यही प्रार्थना है कि मेरे पाँचो पतियों को दासता से छुड़ा दीजिए। धृतराष्ट्र ने फ़ौरन् द्रौपदी की प्रार्थना पूरी करके सब मामलों में पांडवों को आज़ादी दे दी। धर्मराज युधिष्ठिर इस प्रकार छुटकारा पाकर धृतराष्ट्र की बड़ाई करने लगे, और द्रौपदी तथा भाइयों के साथ उन्होंने धृतराष्ट्र के चरणों में प्रणाम किया। इसके बाद वे रथ में बैठकर इंद्रप्रस्थ को चले आए।

पांडवों के हस्तिनापुर छोड़ते ही दुष्ट मंत्रियों ने दुर्योधन को बहकाया। वह मंत्रियों की सलाह से धृतराष्ट्र के पास जाकर बोला—"पिताजी पांडवों को छोड़ देना ठीक नहीं हुआ। वे मेरे शत्रु हैं। भीम और अर्जुन इसका बदला लेने के लिये हमें कभी-न-कभी मारेंगे।"

धृतराष्ट्र बोले—"तो अब इसका उपाय क्या है?" दुर्योधन ने कहा—"युधिष्ठिर को फिर पाँसा खेलने के लिये बुलाइए।"

धृतराष्ट्र ने पुत्र की बात मानकर युधिष्ठिर को फिर बुलाने के लिये आदमी भेजा। युधिष्ठिर इंद्रप्रस्थ भी नहीं पहुँचे थे, बीच ही में ख़बर पाकर उन्होंने अपना रथ हस्तिनापुर को

लौटाया। इधर यह पहले ही निश्चय हो गया था कि खेल में यदि दुर्योधन हारे, तो वह बारह वर्ष तक जंगल में रहे और उसके बाद एक वर्ष तक छिपकर रहे। इसी तरह यदि युधिष्ठिर हारें, तो वह द्रौपदी और अपने भाइयों के साथ ऐसा ही करें। इन तेरह वर्षों के बीत जाने के बाद जो जिसका राज्य है वह उसको मिल जायगा। परंतु एक वर्ष तक छिपकर रहने में यदि दुर्योधन या पांडवों के रहने का स्थान मालूम हो जायगा, तो दोनों को फिर बारह वर्ष तक जंगल में रहना पड़ेगा।

युधिष्ठिर आए और इसी शर्त के अनुसार फिर जुआ खेलने लगे। इस बार भी शकुनि दुर्योधन की तरफ़ से युधिष्ठिर के साथ खेलने लगा। दुष्ट शकुनि के छलों का पार नहीं था। इसलिये इस बार भी उसकी चालों से युधिष्ठिर की हार हुई। परंतु दूसरा कोई उपाय नहीं था। प्रतिज्ञा का पालन क्षत्रियों का एक ख़ास धर्म है। इस बात को धर्मराज युधिष्ठिर अच्छी तरह जानते थे। इसी से पूरी हार हो जाने पर उन्होंने द्रौपदी और भाइयों के साथ वन में जाने का विचार किया।

जाते समय युधिष्ठिर धृतराष्ट्र, द्रोण, कृपाचार्य, विदुर और दूसरे महात्माओं के पास गए और उनके चरणों में प्रणाम करते हुए बहुत नरमी के साथ उनसे वन जाने की आज्ञा माँगी। महाराज युधिष्ठिर का धीरज देखकर सभी ने लज्जा से अपना सिर नीचा कर लिया। पांडवों की भलाई चाहनेवाले परम ज्ञानी विदुर बड़े दुःख के साथ बोले—"राजन्,

माता कुंती को आप मेरे पास छोड़ जाइए। वे जंगल के बड़े-बड़े कष्टों को नहीं सह सकेंगी। यहाँ मैं उनके मन के दुःख को अच्छी-अच्छी बातों से कम करता रहूँगा।"

युधिष्ठिर ने कहा—"महात्माजी, आप हमारे पिता के बराबर हैं। आपके समान हमारा हितैषी और कौन हो सकता है। हमारी मा आपके पास रहे, इसमें क्या संदेह हो सकता है।"

अंत में पांडव लोग द्रौपदी-समेत गेरुए कपड़े पहनकर माता कुंती से बिदा लेने को गए। ज्योंही वे पहुँचे, त्योंही कुंती दुःख से घबराकर ज़मीन पर गिर पड़ीं। उनको सुध नहीं रहा। द्रौपदी ने उनको ज़मीन से उठाया। होश आने पर कुंती ने पुत्रों को आशीर्वाद दिया, और द्रौपदी को गले से लगा लिया। बोलीं—"बेटी, तुम लक्ष्मी हो, सती हो। वन में पतियों की सेवा करना, और धर्म में ध्यान रखकर जंगल के दुःख सहना। यही मेरी असीस है।" इसके बाद वे सब कुंती के चरणों को छूकर जंगल में चले गए।

उनके जाते समय चारों ओर से मनुष्य हाहाकार करते हुए आने लगे। उनकी आँखों से बराबर आँसुओं की धारा बहने लगी। उनके दुःख का पार नहीं रहा। आगे-आगे पांडवों का पुरोहित, उसके पीछे पाँचों पांडव, और सबके पीछे द्रौपदी चलने लगीं। द्रौपदी के सिर के बाल खुले हुए थे। चलते समय क्षमावान् युधिष्ठिर ने अपनी दोनों आँखें

कपड़े से ढक लीं। इसलिये कि उनके क्रोध से वैरी दुर्योधन का कोई बुरा न हो जाय।

चलते समय इनके साथ कुछ ब्राह्मण भी हो गए थे। धर्मराज युधिष्ठिर ने उनको बहुत ही रोका और जंगल के कई दुःख कहे, पर वे नहीं माने। बल्कि उन्होंने कहा—"महाराज, हम आपका साथ कभी भी नहीं छोड़ेंगे। आपके समान न्यायी और धर्मात्मा के पास रहकर भला हम कैसे कोई दुःख पा सकते हैं? हमको आपके साथ रहने से ज़रा भी तकलीफ़ मालूम न होगी। और हम भीख माँगकर अपना पेट भर लेंगे। आप हमारे लिये चिंता न करें।"

इसके बाद चलते-चलते वे सब शाम को प्रमाण नाम के बड़ के पेड़ के पास पहुँचे। वहाँ गंगाजी के जल में उन्होंने स्नान किया, गंगा-जल पिया और रात वहीं बिताई।

दूसरे दिन सवेरे महाराज युधिष्ठिर ने जब ब्राह्मणों को चलने के लिये तैयार देखा, तो वे बोले—"ब्राह्मणो, हमारे पास इस समय धन-दौलत नहीं है। अब हम जंगल में रहकर फल-फूल खाकर अपना गुज़र करेंगे। आपका दुःख देखकर हमको बड़ा दुःख होता है। इसलिये आप यहाँ से चले जायँ, यही मेरी हाथ जोड़कर बिनती है।"

ब्राह्मण बोले—"महाराज, हमारे जंगल के दुःख और खाने-पीने की चिंता आप न करें। हम भगवान् से आपकी भलाई की प्रार्थना करेंगे और अच्छी-अच्छी बातें कहकर आपको सुख

पहुँचावेंगे।" यह सुनकर महाराज युधिष्ठिर आगे कुछ नहीं कह सके। भला ऐसे हितैषी ब्राह्मणों को वे कैसे रोक सकते थे।

इसी समय तत्त्वज्ञानी शौनक ऋषि वहाँ आए। और अच्छी-अच्छी बातें कहकर धर्मराज युधिष्ठिर को सुखी करने लगे। उन्होंने कहा—"महाराज, संसार में हजारों तरह के दुःख और डर मौजूद हैं, इसमें संदेह नहीं। परंतु वे मूर्ख आदमियों को ही सताया करते हैं, पंडितों का कुछ नहीं कर सकते। यह बात आप ठीक-ठीक समझ लें।"

महाराज युधिष्ठिर इन बातों को अच्छी तरह समझ गए। ऋषि ने फिर कहा—"मूर्ख मनुष्य ही जल्दी घबरा जाते हैं। पंडित लोग हमेशा संतोष रखते हैं। संतोष ही बड़ा भारी सुख है; संतोष न हो, तो बड़ा भारी दुःख समझना चाहिए।" इस तरह समझाकर शौनक ऋषि वहाँ से चले गए। शौनक के चले जाने पर धौम्य पुरोहित ने युधिष्ठिर से सूर्य की पूजा करने के लिये कहा। युधिष्ठिर सूर्यनारायण की पूजा करने लगे। कहते हैं, युधिष्ठिर की पूजा से प्रसन्न होकर सूर्य भगवान् अच्छा रूप बनाकर उनके सामने आए और बोले—"बेटा, तुम्हारी सारी इच्छाएँ पूरी होंगी। जंगल में तुमको किसी बात की कमी नहीं रहेगी। तेरह वर्ष पूरे हो जाने पर तुमको फिर राज्य मिलेगा।" यह कहकर सूर्यनारायण वहाँ से चले गए।

आठवाँ अध्याय

इसके बाद पांडव धौम्य पुरोहित और ब्राह्मणों को साथ लेकर, सरस्वती नदी के किनारे काम्यक्-वन में पहुँचे। महाराज युधिष्ठिर इस जगह की सुंदरता देखकर ख़ुश हो गए, और वहीं रहने लगे।

इधर, पांडवों के वन चले जाने के बाद, महाराज धृतराष्ट्र ने बुद्धिमान् विदुर को बुलाकर कहा—"विदुर, तुम बड़े बुद्धिमान् और धर्म को जाननेवाले हो। जो होने का है, सो तो होगा ही, परंतु अब दोनो कुलों का जिसमें भला हो, आप ऐसी ही सलाह मुझे दीजिए।"

महात्मा विदुर बोले—"महाराज, शकुनि, दुर्योधन और दुःशासन ने सभा में बहुत ही बुरा काम किया है। कुरु-कुल को कलंक का काला टीका लगानेवाले आपके पुत्र दुर्योधन ने कपट-खेल से सीधे-सादे युधिष्ठिर को हराया है। दुष्ट दुःशासन ने सभा के बीच द्रौपदी का अपमान कर कुरु-कुल में धब्बा लगाया है। अब मेरी आपसे यही प्रार्थना है कि जिन्होंने यह सब बुरा काम किया है, उन सबको पूरी-पूरी सज़ा दीजिए।"

विदुर की यह बात महाराज धृतराष्ट्र को अच्छी नहीं लगी। उन्होंने मन में सोचा कि विदुर पांडवों की तरफ़ बोलता है। इसलिये वे बोले—"विदुर, पांडव मेरे पुत्र के बराबर हैं, लेकिन

दुर्योधन मेरे शरीर से पैदा हुआ पुत्र है। ऐसी हालत में क्या कोई समझदार आदमी दूसरे के लिये अपने मन और शरीर को छोड़ देने की सलाह दे सकता है ? विदुर, मैं तुम्हारा ख़ूब सम्मान करता हूँ। परंतु अब मुझे साफ़ मालूम हो रहा है कि तुम मुझे कपट की बातें बता रहे हो। इसलिये अब मुझे तुम्हारी कोई ज़रूरत नहीं है। तुम यहाँ रहो चाहे और कहीं, इसमें मेरा कोई नुक़सान नहीं है।" यह कहकर धृतराष्ट्र एकदम उठकर महलों में चले गए। महात्मा विदुर भी "यह काम होने का नहीं" कहकर वहाँ से चले गए, और हस्तिनापुर छोड़कर पांडवों के पास जंगल में चले आए।

पांडवों ने दूर से जब विदुर को आते देखा, तो वे आगे बढ़कर उनको अपनी कुटी में लाए, और उनके चरणों में प्रणाम कर उन्हें अच्छे आसन पर बिठाया। कुशल के बाद वहाँ आने का कारण पूछा। महात्मा विदुर ने धृतराष्ट्र के जो-जो बातें हुई थीं, सब कह डालीं, और बड़े दुःख के साथ बोले—"युधिष्ठिर, महाराज धृतराष्ट्र ने मुझे छोड़ दिया है।"

महात्मा विदुर के साथ ऐसा बर्ताव होने का हाल सुनकर सबको बड़ा दुःख हुआ। सब विधाता की टेढ़ी चाल देखकर चुप हो रहे। इसके बाद कई कथा-कहानियाँ कहकर महात्मा विदुर ने धर्मराज युधिष्ठिर को समझाया। उनकी सब बातों का मतलब यही था कि "जो आदमी

सत्य और न्याय के लिये कई तरह के दुःख झेलता है और क्षमा तथा धीरज से उन दुःखों को सहता है, उसी की जीत होती है।" धर्मराज युधिष्ठिर ने चित्त लगाकर ये सारी उत्तम बातें सुनीं, और कहा—"मैं आपकी आज्ञानुसार ही चलने की चित-मन से कोशिश करूँगा।"

इधर विदुर के चले जाने से धृतराष्ट्र घबरा उठे। उन्होंने विदुर को लाने के लिये काम्यक्-वन में आदमी भेजा। महात्मा विदुर धृतराष्ट्र के बुलाने से हस्तिनापुर आए। धृतराष्ट्र ने उनको गले से लगाकर कहा—"भाई, मेरा अपराध क्षमा करो।" विदुर ने धृतराष्ट्र को पांडवों के वनवास के सब दुःख बताए और कहा—"उनके लिये अब न्याय होना चाहिए।" विदुर सच्चाई के ऊपर चलनेवाले सच्चे आदमी थे, इसलिये वे सच के लिये सब कुछ करने को तैयार थे।

पांडवों के वन जाने की बात इसके पहले ही दूर-दूर देशों में फैल गई थी। द्वारका के नाथ श्रीकृष्ण को भी मालूम हो गया था। इसलिये वे पांडवों को देखने के वास्ते काम्यक्-वन में गए। उनके पहुँचने से सबको बड़ा आनंद हुआ। दुर्योधन ने जो-जो बुरे काम किए थे, उन सब का हाल सुनकर श्रीकृष्ण बहुत ग़ुस्से में हुए। बोले—"दुर्योधन का इस तरह आपको दुःख देना अब मुझसे सहा नहीं जाता है। इसका ठीक-ठीक इलाज करना पड़ेगा।"

श्रीकृष्ण का क्रोध देखकर अर्जुन ने उनसे कहा—"आपको

धीरज कभी नहीं छोड़ना चाहिए। क्रोध आपके लिये अच्छा नहीं लगता। आप अपने बड़प्पन को याद कीजिए।" अर्जुन की इन बातों ने आग में जल डालने के समान काम किया। श्रीकृष्ण का क्रोध जाता रहा। वे धीरज रखकर बोले—"अर्जुन, तुम मेरे पक्के दोस्त हो। जो तुमको प्यार करता है, वह मुझको भी प्यार करता है। जो तुमसे वैर करता है, वह मुझसे भी वैर किया करता है।"

अर्जुन और श्रीकृष्ण की ऐसी बातें हो ही रही थीं, इसी समय वहाँ द्रौपदी आईं और रोते-रोते कहने लगीं—"श्रीकृष्ण, आप दुर्बल के बल हैं, असहाय के सहायक हैं। इसीसे आज मैं आपसे सब बातें कहना चाहती हूँ।" यह कहकर द्रौपदी ने दुर्योधन, शकुनि और दुःशासन के बुरे कामों की सारी कहानी श्रीकृष्ण से कही, और कहा—"श्रीकृष्ण, पांडवों को धिक्कार है। अर्जुन के गांडीव धनुष धारण करने को धिक्कार है, पांडवों का इतना बल वृथा है। दुष्टों ने मेरी इतनी बेइज्ज़ती की, लेकिन इन लोगों ने चुपचाप सब सह लिया। यह बात समझ में नहीं आती कि उस समय इनको क्या हो गया था।"

द्रौपदी जब ये बातें कहने लगीं, तब श्रीकृष्ण बोले—"तुम्हारी बातें सुनकर दुःख से मेरा हृदय फटा जाता है। द्रौपदी, धीरज रक्खो। दुःख करने से कुछ नहीं होता। जिस प्रकार आज तुम रो रही हो, वैसे ही किसी दिन कुरु-कुल की नारियाँ रोवेंगी। सुख-दुःख के जोड़े हुआ करते हैं। कभी सुख

है, तो कभी दुःख ; और कभी दुःख है, तो कभी सुख । यह जानकर तुम किसी तरह का दुःख मत करो ।"

दयावान् श्रीकृष्ण ने इस प्रकार द्रौपदी को ढाढ़स बँधाया। बाद को उन्होंने युधिष्ठिर की तरफ़ देखते हुए कहा—"धर्म-राज, धर्म की जीत अवश्य होती है । तेरह वर्ष बीत जाने पर आपको फिर हस्तिनापुर की राजगद्दी मिलेगी, और आप ख़ूब राज करेंगे ।" इस प्रकार श्रीकृष्ण सबको समझाकर द्वारका को चले गए ।

श्रीकृष्ण के चले जाने पर धर्मराज युधिष्ठिर द्रौपदी और भाइयों के साथ द्वैत-वन में गए । द्वैत-वन अच्छे-अच्छे पेड़ों और बेलों से भरा था । जब पांडव वहाँ पहुँचे, तो सैकड़ों ब्राह्मणों के आने से वह स्थान भर गया । वे ब्राह्मण सबेरे जब मीठी आवाज़ से वेद-मंत्र पढ़ते, तो सबको बहुत अच्छा मालूम होता था । उधर सूर्य का उदय होना, सूर्य की सुनहरी किरणों का चारो ओर फैलना, और इधर इन ब्राह्मणों का वेद-मंत्र कहना बहुत ही भला लगता था ! धर्मराज युधिष्ठिर उस समय ब्राह्मणों की सभा में बैठकर चित्त से वेद-गान सुनते थे । इस प्रकार पांडव लोग जहाँ रहते, वही स्थान तपोवन के समान हो उठता था । जिस प्रकार देश-देशांतरों में पांडवों के वन जाने की ख़बर फैल गई थी, वैसे हो तपोवन में ऋषियों को भी यह हाल मालूम हो गया था । महाराज युधिष्ठिर के चरित्र की बड़ाई और उनके धर्मानुराग का हाल किसी से

छिपा नहीं था। जंगल के तपस्वी भी महाराज के गुणों पर मोहित थे, इसी से वे धर्मराज के पास आकर उन्हें कई तरह के उपदेश देते थे। कोई ज्ञान की बातों से, कोई पुरानी कहानियों से और कोई पुराण की बातों से उनके हृदय में आनंद पहुँचाते थे।

नवाँ अध्याय

परंतु द्रौपदी को चैन नहीं था। वह पांडवों के वनवास के दुःख और अपने अपमान की बातें याद कर-करके बहुत दुःखी होती थी। उसका हृदय फटा जाता था। एक दिन उसने दुर्योधन के बुरे कामों का ज़िक्र करते हुए युधिष्ठिर से कहा—"राजन्, आप राज-महल में नरम बिछौने पर सोते थे। हीरे-मोतियों के सिंहासन पर बैठकर राज्य करते थे। आपके भोजन के समय सोने के बर्तनों में कई तरह की चीज़ें सजाई जाती थीं। सैकड़ों दास-दासियाँ आपकी आज्ञा का पालन करने के लिये हमेशा तैयार रहती थीं। वही आज आप फल-फूल का भोजन करते हैं, घास के बिछौने पर सोते हैं, और कुश के आसन पर बैठकर योगियों की तरह जीवन बिताते हैं। आपके भाई कितने आराम से राज-महल में पले थे, वे आज आपके लिये कितना दुःख उठा रहे हैं। ये सब बातें क्या आपको याद नहीं आतीं? और दुष्टों ने मेरा जो बुरा हाल किया है, क्या उसकी याद करके आपको क्रोध नहीं आता? यदि ऐसा ही है, तो महाराज, आपके बल और हिम्मत को धिक्कार है!"

यह बातें कहते-कहते द्रौपदी का मुख क्रोध से लाल हो उठा। थोड़ी देर चुप रहकर वह फिर बोलीं—"मैं समझती हूँ, आपको क्रोध बिल्कुल नहीं आता। परंतु यह भी प्रसिद्ध बात है कि

बिना क्रोध का राजपूत राजपूत नहीं कहलाता। मैं आपमें इससे उल्टी बात देख रही हूँ। जो क्षत्री (राजपूत) लड़ाई में अपना तेज नहीं दिखाता, उसे सब लोग बुरा कहते हैं। इसलिये शत्रुओं को किसी तरह क्षमा नहीं करना चाहिए। क्षमा करना डरपोक आदमियों का काम है। अब आपका पहला काम यही है कि आप असली राजपूती दिखाकर कौरवों का जड़ से नाश करें।"

कई बार ऐसा होता है कि बहुत दुःख पड़ने पर धर्मात्मा लोग भी यह समझने लग जाते हैं कि ईश्वर कोई चीज़ नहीं है—अगर ईश्वर होता, तो हमें दुःख नहीं होता। द्रौपदी भी इन्हीं बातों को सोचकर दुःख से घबरा उठी थी। कहाँ तो वह राज-महल में सुख से रहती थी, और कहाँ उसे जंगल की तकलीफ़ उठानी पड़ती थी, यही दुःख था। और इसीलिये उसको ईश्वर पर संदेह होने लगा था। परंतु धर्मराज युधिष्ठिर देवता पुरुष थे। न उनको किसी से क्रोध था, न वैर। वे दुःख को ही सुख मानते थे। द्रौपदी को यह सहन नहीं होता था। इसी से उसने युधिष्ठिर से कहा—"राजन्, आपने कितने व्रत किए हैं, कितने ब्राह्मणों की सेवा की है, कितने यज्ञ किए हैं, कितना दान किया है, किंतु इनके करने से क्या फल हुआ? सुख और संपदा को हाथ से छुड़ाकर भगवान् ने आपको दुःख के गहरे खड्ढे में डाल दिया है, तो भी आप धर्म को पकड़कर चलना चाहते हैं? मुझे आपके इस धर्म पर बड़ा अचंभा होता है।"

द्रौपदी यह चाहती थी कि महाराज युधिष्ठिर कौरवों से वैर का बदला लें। पर युधिष्ठिर को उसने इसके लिये तैयार नहीं देखा, इसीसे उनको ऐसी बुराई की।

द्रौपदी को ये सब बातें चुपचाप सुनकर अंत में युधिष्ठिर बोले—"प्यारी, क्रोध मनुष्य का नाश करता है, और क्रोध ही बुराई की जड़ है। जो आदमी क्रोध को रोक सकता है, उसी का भला होता है। किंतु जिसकी वैसी हिम्मत नहीं, उसका क्रोध ही वैरी की तरह नाश कर डालता है। इसलिये मेरे समान मनुष्य किस तरह इस क्रोध की आग में जले। यह अनहोनी बात है। द्रौपदी, मनुष्य क्रोध में आकर बड़े लोगों से भी कड़ूए वचन कहने में नहीं चूकता, बल्कि कभी-कभी उनको मार भी डालता है। इतना ही नहीं, वह ख़ुद भी अपने हाथ से मर जाता है। क्रोध मनुष्यों का बड़ा भारी वैरी है। इसीलिये जो आदमी बुद्धि से इस क्रोध को जीत लेते हैं, उन्हीं को पंडित लोग तेजस्वी पुरुष कहते हैं। प्यारी, क्रोधी आदमी कभी भी अपने काम को ठीक तौर से नहीं कर सकता, और न दुनिया का बर्ताव ही अच्छा कर सकता है। क्रोधी आदमी कई बार पागलों की तरह काम किया करता है। इसीलिये साधु लोग क्रोध को जीत लेनेवाले मनुष्य की बहुत बड़ाई करते हैं।"

इस प्रकार धर्मात्मा युधिष्ठिर ने अपनी स्त्री द्रौपदी को क्रोध की कई बुराइयाँ बताईं, और कई तरह के उपदेश देने

के बाद फिर कहा—"द्रौपदी, क्रोध बड़ी बुरी चीज़ है। देखो, जब कोई किसी पर क्रोध करेगा, तो वह भी उस पर क्रोध करेगा, मारने पर मारेगा, बुरा करने पर बुरा करेगा। इस प्रकार विचार करो, तो सारी पृथ्वी का नाश हो जायगा। इसलिये, हे द्रौपदी, ज्ञानी पुरुषों को, चाहे वे सबल हों या निर्बल, हमेशा दुःख के समय क्षमावान् होना चाहिए। ऐसा पंडितों का कहना है। * हे द्रौपदी, यदि दुर्बल आदमी को बलवान् आदमी दुःख दे और वह उससे नाराज़ हो जाय, तो यह उसकी भूल है। क्योंकि वह दुर्बल आदमी बलवान् आदमी का कुछ भी बिगाड़ नहीं कर सकता। इसलिये दुर्बल आदमी को क्रोध रोकना ही चाहिए। जो मनुष्य क्रोधी आदमी पर क्रोध नहीं करता, वह अपने को और दूसरे को बड़े भारी डर से बचाता है। देखो, धरती पर हम पेशाब करते हैं, पाख़ाना फिरते हैं, चलते हैं, फिरते हैं, तो भी वह ऐसी क्षमावान् है कि कभी नाराज़ नहीं होती, इसी तरह यदि धरती के समान क्षमावान् आदमी मनुष्यों में न हो, तो आपस में उनका मेल नहीं हो सकता। क्योंकि लड़ाई की जड़ क्रोध ही है। †

---

* तस्माद्बलवता चैव दुर्बलेन च नित्यदा ;
क्षन्तव्यं पुरुषेणाहुरापत्स्वपि विजानता।

† यदि न स्युर्मनुष्येषु क्षमिणः पृथ्वीसमाः ;
न स्यात् सन्धिर्मनुष्याणां क्रोधमूलो हि विग्रहः।

(वनपर्व, २९ वाँ अध्याय)

इसलिये हे द्रौपदी, क्रोध को क्षमा से जीतना चाहिए। अब तुम मेरी इन सब बातों को समझकर हृदय में शांति रक्खो।"

धर्मराज युधिष्ठिर का यह उपदेश सुनकर द्रौपदी ने फिर भी कहा—"महाराज, धर्म कोई चीज़ नहीं है।" युधिष्ठिर स्त्री की इस भ्रांति को दूर करने के लिये फिर बोले—"प्यारी, हर समय धर्म का ही सहारा लेकर रहना अच्छा है। धर्म का रास्ता ही शांति और भलाई का रास्ता है। जब तक कोई मनुष्य सच्चा मनुष्य रहता है, और धर्म को नहीं छोड़ता, तब तक वह धर्म की बुराई नहीं करता। जो लोग अपने मतलब के लिये धर्म पर चलते हैं, उनको मैं बनियों की गिनती में गिनता हूँ। बालक होकर भी यदि कोई धर्म पर चले, तो मैं उसे चतुर समझूँगा। हे द्रौपदी, परमेश्वर ने जो कुछ किया है, सब हमारी भलाई के लिये किया है। वे सबके बनानेवाले और सबके पालनेवाले हैं। उनके इस बड़े संसार में मैं एक मामूली कीड़े के समान होकर किस तरह उनके कामों में दोष दिखा सकता हूँ? इस गहरे और सुनसान जंगल में मैं अच्छी तरह धर्म को बचाकर शांति पाऊँगा। प्यारी द्रौपदी, तुम भी ऐसा ही करो। एक दिन सच और धर्म की जीत ज़रूर ही होगी।"

इसी समय व्यासजी ने वहाँ आकर महाराज युधिष्ठिर को प्रतिस्मृति-विद्या सिखाई, और कहा—"हे धर्मराज, इस विद्या

से देवताओं के साथ मुलाक़ात होती है, और इसी से मनुष्य अस्त्रों को पाकर शत्रुओं को मार सकता है। तुम यह विद्या अर्जुन को देकर उनसे महादेवजी की आराधना करने को कहो। ऐसा होने पर तुम्हारी मन की बात पूरी होगी।" यह कहकर पितामह व्यासजी वहाँ से चले गए।

व्यासजी के चले जाने पर धर्मराज युधिष्ठिर अपने भाई अर्जुन को काम्यक्-वन के सुनसान स्थान में ले गए, और वहाँ उनको व्यासजी की दी हुई विद्या सिखाई। इसके बाद वे अर्जुन से बोले—"प्रिय भाई, हमको तुम्हारा बड़ा भारी भरोसा है। तुम्हीं से हमारा सब कुछ होनेवाला है। तुम महादेवजी की पूजा करोगे, तो तुम्हें अच्छे-अच्छे हथियार मिलेंगे, और उन हथियारों से हमारा पूरा भला होगा। क्योंकि फिर कोई शत्रु हमसे जीत नहीं सकेगा।"

अर्जुन ने बड़े भाई की आज्ञा को सिर पर चढ़ाकर उनके चरणों में भक्ति-भाव से प्रणाम किया, और साधना के लिये गंधमादन पर्वत पर चले गए। वहाँ पहुँचकर उन्होंने महादेवजी की कठोर तपस्या और पूजा करना शुरू किया। महादेवजी प्रसन्न हुए। उन्होंने उनकी साधना से बहुत प्रसन्न होकर पाशुपत-अस्त्र दिया और बोले—"अर्जुन, तुम इस अस्त्र के लायक़ हो। इस अस्त्र से लड़ाई में तुम्हारी जीत होगी। यह अटल बात है।"

इधर तो महादेवजी से अर्जुन ने यह अस्त्र पाया, और उधर

अर्जुन के लौटने में देर देखकर धर्मराज युधिष्ठिर बहुत घबराए। इसी समय कई मुनियों ने आकर उनको समझाया और कई प्रकार की अच्छी-अच्छी कहानियाँ कहकर उनके चित्त में आनंद पहुँचाया। देवर्षि नारद भी इसी समय द्वैत-वन में आए और धर्मराज को उन्होंने तीर्थ की महिमा बताई। मुनिवर के वचन सुनकर धर्मराज के चित्त में तीर्थों के देखने की इच्छा हुई। नारद वहाँ से चले गए। नारदजी के चले जाने पर महाराज युधिष्ठिर द्रौपदी और भाइयों के साथ तीर्थ-दर्शन को निकले। अनेक तीर्थों के दर्शन करते-करते वे गंधमादन पर्वत पर पहुँचे। वहाँ अर्जुन के साथ उनकी भेंट हुई। बहुत दिनों के बाद अर्जुन को पाकर वे बहुत ख़ुश हुए। हर्ष से उनका दिल भर गया, और उनके आनंद का पार नहीं रहा। वे तपस्वी अर्जुन को बार-बार छाती से लगाकर उनका मुख चूमने लगे। उनकी दोनो आँखों से आनंद के आँसू बहने लगे। अंत में वे सब द्रौपदी के साथ द्वैत-वन में आए और वनवास का बाक़ी समय वहीं बिताने लगे।

दसवाँ अध्याय

एक बार कौरवों की सभा में एक ब्राह्मण ने आकर पांडवों के वनवास के दुःखों का हाल कहा, जिसे सुनकर दुष्ट शकुनि दुर्योधन के पास जाकर बोला—"महाराज, सुनता हूँ, पांडव लोग वृक्षों की छाल पहने जंगल में बहुत दुःख पा रहे हैं। इस समय उनके पास चलकर उनके दुःख-दरिद्र को देखना और उन्हें अपना प्रताप दिखाना चाहिए।"

दुर्योधन शकुनि के वचन सुनकर बहुत प्रसन्नता से बोले—"मामाजी, आप जो बात कहते हो, वह बिल्कुल ठीक है। क्योंकि पुत्र, धन और राज्य पाने से मन में जितनी प्रसन्नता होती है, उससे भी अधिक आनंद शत्रुओं का दुःख देखकर होता है। इसलिये पांडवों का दुःख देखकर मेरे मन में जैसा आनंद होगा, वैसा आनंद मालूम होता है, सारी पृथ्वी का राज्य पाने पर भी नहीं होगा। मेरी बहुत इच्छा है कि हम दल-बल के साथ वहाँ चलें। किंतु इस विषय में सबसे पहले पिताजी की आज्ञा ले लेनी चाहिए। परंतु किस उपाय से आज्ञा लेना होगा, इसका निश्चय कीजिए।"

दूसरे दिन सबेरे ही शकुनि और कर्ण दुर्योधन के पास आए। कर्ण ❀ बोला—"हम एक उपाय करेंगे। द्वैत-वन में दुर्योधन

❀ कर्ण कुंती का प्रथम पुत्र था और सूर्य के अंश से पैदा हुआ था।

के बहुत-से ग्वाल रहते हैं। उनको सम्हालने का बहाना लेकर वहाँ जाने में कोई संदेह नहीं करेगा। इसलिये इसी बहाने से हम लोग वहाँ चलेंगे।"

कर्ण की बात सुनकर दुर्योधन बहुत प्रसन्न हुआ। उसने फ़ौरन् ही धृतराष्ट्र के पास जाकर सारा हाल कहा, और उनकी आज्ञा माँगी। धृतराष्ट्र बोले—"मैंने सुना है, द्वैत-वन में बलवान् पांडव रहते हैं। तुमने युधिष्ठिर को जुए के खेल में छल से हराया है। यदि तुम फिर वहाँ जाकर उनका कोई बिगाड़ करोगे, तो वे तप के प्रभाव से तुमको जला डालेंगे।"

शकुनि बोला—"महाराज, युधिष्ठिर बड़े धर्मात्मा हैं। उन्होंने सभा में जो प्रतिज्ञा की है, उसे वे कभी नहीं तोड़ेंगे। और न वे हमारे काम में कोई रुकावट ही डालेंगे। उनके भाई भी उनकी आज्ञा के बिना हमारे काम में कोई रुकावट नहीं डाल सकेंगे। गौओं की देख-भाल और ग्वालों की सम्हाल ही हमारे वहाँ जाने का ख़ास मतलब है; उनका कोई बिगाड़ करना हमारा मतलब नहीं।"

महाराज धृतराष्ट्र ने शकुनि की बात सुनकर इच्छा न होते हुए भी दुर्योधन को जाने की आज्ञा दे दी। दुर्योधन पिता की आज्ञा पाते ही सैकड़ों सिपाही, दास-दासी, वज़ीर-उमराव, और अपनी रानियों को साथ लेकर बड़ी धूम-धाम से यात्रा को निकला। वैरी पांडवों को अपना प्रताप और ठाट-बाट दिखाना ही इन लोगों के वहाँ जाने का ख़ास मतलब था। अंत में, चलते-

चलते वे द्वैत-वन के पास पहुँचे। वहाँ एक सुंदर नदी के किनारे एक बहुत अच्छा बाग़ था। उसीमें इन लोगों ने अपने डेरे लगाए, और एक बड़े भारी उत्सव का प्रबंध किया।

यह 'पुष्प-बाग़' गंधर्वराज चित्रसेन का था। पहले से ही यह सारा स्थान गंधर्वों के अधिकार में आया हुआ था। इसलिये उन्होंने दुर्योधन को बाग़ में ठहरने के बारे में आपत्ति की। दुर्योधन ने उनकी आपत्ति पर कोई ख़याल नहीं किया। इससे कौरवों और गंधर्वों में बड़ी भारी लड़ाई हुई। इस लड़ाई में कौरवों की फ़ौज हार गई। गंधर्वराज चित्रसेन की आज्ञा से सब लोगों को और उनकी स्त्रियों को क़ैद कर लिया गया। सिर्फ़ थोड़ी-सी फ़ौज छिपकर भाग निकली, और पास ही युधिष्ठिर के आश्रम में पहुँची। वहाँ जाकर सिपाहियों ने सारा हाल युधिष्ठिर से कहा और बहुत नम्रता के साथ कौरवों को क़ैद से छुड़ा देने की प्रार्थना की। परंतु भीमसेन क्रोध में आकर उनको गालियाँ देने लगे। यह बात युधिष्ठिर को अच्छी न लगी। वे भीमसेन को रोकते हुए बोले—"भाई देखो, जाति-जाति में झगड़े हमेशा हुआ करते हैं, तो भी कुल-धर्म कभी नहीं छोड़ना चाहिए। यदि दूसरा कोई आदमी वंश का नाश करने लगे, तो अच्छे पुत्रों का काम है कि वे उस दुष्ट को रोकें। इसलिये ज़रा भी देर न करके अर्जुन, नकुल, सहदेव आदि वीरों के साथ तुम वहाँ जाओ, और दुर्योधन आदि को छुड़ाने में कोई कसर मत रक्खो।"

धर्मराज की आज्ञा मानकर भीम, अर्जुन आदि रथ पर सवार होकर गंधर्वों के पास गए और कौरवों को छोड़ देने के लिये प्रार्थना की। परंतु गंधर्वराज चित्रसेन ने उनकी एक भी बात नहीं मानी। तब महावीर भीम और अर्जुन ने गंधर्वों को लड़ाई में हराकर दुर्योधन आदि को क़ैद से छुड़ा दिया। कौरवों की स्त्रियाँ कौरवों की फ़ौज की बुराई और पांडवों के बल की बड़ाई करने लगीं। दुर्योधन लज्जा से माथा नीचा किए हुए युधिष्ठिर के पास बिदा लेने को आया। धर्मराज युधिष्ठिर ने बहुत ही मीठे वचनों में कहा—"भाई, अब तुम कभी ऐसा काम मत करना। इस प्रकार का काम बिना बुद्धिवाले किया करते हैं; और ऐसे कामों से मनुष्य कभी सुख नहीं पा सकता। जो हो, अब तुम ख़ुशी से अपने भाइयों के साथ घर को जाओ।"

कौरव लौट गए। कहते हैं, एक दिन युधिष्ठिर ने स्वप्न में देखा कि एक हरिणों का झुंड उनके सामने आकर खड़ा है। युधिष्ठिर के पूछने पर हरिण कहते हैं—"महाराज, हम लोग हरिण हैं, यह द्वैतवन हमारे रहने की जगह है। परंतु आपके महाबलवान् भाई हमारे वंश का नाश किए देते हैं। सिर्फ़ हम थोड़े से हरिण बचे हैं, आप यदि कृपाकर दूसरी जगह चले जायँ, तो हमारा वंश बच सकता है।" सबका भला चाहनेवाले धर्मराज युधिष्ठिर को हरिणों का काँपता हुआ शरीर देखकर दया आ गई। उन्होंने कहा—"हे हरिणों, मैं अवश्य

ही तुम्हारी प्रार्थना पूरी करूँगा। मैं किसी को तकलीफ़ देना पसंद नहीं करता। इसलिये तुम लोग चिंता न करो।"

सबेरा होते ही युधिष्ठिर ने अपने भाइयों को पास बुलाकर कहा—"भाइयो देखो, मैंने स्वप्न में देखा है कि हिरणों का एक झुंड मेरे सामने आकर कहता है—महाराज, अब हम बहुत थोड़े रह गए हैं, इसलिये अब आप हम पर दया करें।" इस प्रकार स्वप्न का सारा हाल कहकर युधिष्ठिर बोले—"भाइयो, हरिणों ने ठीक बात कही है। जंगल के जीवों पर दया करना हमारा ख़ास काम है। अब हम लोगों के वनवास के सिर्फ़ ८ मास बाक़ी हैं। इसलिये आओ, हम लोग फिर उसी सुंदर काम्यक्-वन में चलकर वनवास के बाक़ी दिन बितावें।

धर्मात्मा पांडव धर्मराज युधिष्ठिर के वचनों को मानकर काम करने को तैयार हुए। अतः महाराज युधिष्ठिर उनको साथ लेकर काम्यक्-वन में चले गए।

एक दिन धृतराष्ट्र का जँवाई सिंधु का राजा जयद्रथ, कुछ फ़ौज के साथ उस जंगल में होकर जा रहा था। अचानक दूर से उसकी नजर द्रौपदी पर पड़ी। द्रौपदी के रूप को देखकर वह उस पर मोहित हो गया, और अपनी बुरी इच्छा पूरी करने के लिये आश्रम में आया। उस दिन पांडव लोग द्रौपदी को छोड़कर शिकार के लिये कहीं दूर गए थे। दौपदी आश्रम में अकेली थी। जयद्रथ ने आश्रम में पहुँचकर द्रौपदी को अपनी पहचान बताई। द्रौपदी ने अपने लोगों का जैसा सम्मान

करना चाहिए, वैसा सम्मान कर उसको आसन पर बिठाया। परंतु थोड़ी देर में जयद्रथ की बुरी इच्छा का पता पाकर द्रौपदी उस पर वीर नारी की तरह टूट पड़ीं, और अपने बाहु-बल से उसको बहुत दूर फेंक आईं। परंतु जयद्रथ के बल के सामने सती द्रौपदी की शक्ति हार मान गई। जयद्रथ द्रौपदी को ज़बर्दस्ती रथ में बिठाकर तेज़ी के साथ रथ चलाने लगा। द्रौपदी चिल्लाने लगी। उसका चिल्लाना जंगल में गूँज गया। उसी समय पांडव लोग अपने आश्रम में आए। एकाएक उनके कानों में द्रौपदी के रोने की आवाज़ आई। सुनते ही वे पीछे पाँव उस तरफ़ दौड़े, जिधर से आवाज़ आ रही थी। थोड़ी दूर जाकर उन्होंने देखा कि उनका अंदाज़ा झूठ नहीं था। लक्ष्मी के समान द्रौपदी रथ पर बैठी रो रही है। यह देखकर उन्होंने फ़ौरन् उस रथ की चाल रोक दी। पास आकर देखा कि धृतराष्ट्र का जँवाई जयद्रथ रथ को हाँक रहा है, और इस बुरे काम का करनेवाला भी वही है। उन्होंने द्रौपदी को रथ से उतारकर युधिष्ठिर के साथ आश्रम में भेज दिया और वे उस विश्वासघाती जयद्रथ को मारने लगे। उन्होंने उसे रथ से नीचे खींच लिया और इतना मारा कि वह घायल हो गया। फिर उसके हाथ-पाँव बाँधकर धर्मराज युधिष्ठिर के पास ले आए। परंतु युधिष्ठिर दया के अवतार थे। उन्होंने जयद्रथ को क्षमा कर दिया, और भाइयों से कहा—"भाइयो, इस पर दया करनी चाहिए। इसे छोड़ दो।"

दयावान् युधिष्ठिर की आज्ञा से भाइयों ने उसे छोड़ दिया। जयद्रथ छूटकर धर्मराज युधिष्ठिर के चरणों में पड़ गया, और हाथ जोड़ उनके सामने खड़ा हुआ। उस समय युधिष्ठिर उसकी तरफ़ देखते हुए बोले—"अब तुम छूट गए हो। परंतु तुम्हारी हरकतों से हमें बहुत दुःख है। तुम दूसरे की स्त्री को चाहते हो, इस बुरे काम के लिये तुमको बार-बार धिक्कार है। देखो अब कभी ऐसा पाप मत करना। बुरे कामों के फल बुरे हुआ करते हैं, यह तुमको याद रखना चाहिए। अब तुम अपने साथियों के साथ घर जाओ। अब कभी धर्म को मत छोड़ना। मैं ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि तुम्हारी कुबुद्धि दूर होकर हमेशा धर्म-बुद्धि बढ़ती रहे।"

कुछ दिन और बीते। एक दिन महाराज युधिष्ठिर जल पीने के लिये तालाब के किनारे गए। कहते हैं, वहाँ धर्म बगुले का रूप धारण करके आया, और युधिष्ठिर से कितनी ही बातें उसने पूछीं। धर्मराज युधिष्ठिर ने उन सब बातों का ठीक-ठीक उत्तर दिया। उनमें से कुछ अच्छी-अच्छी बातें यहाँ लिखी जाती हैं—

(१) माता पृथ्वी से भी भारी है, पिता आकाश से भी ऊँचे हैं। और ज्ञान ही पुराना धर्म है।

(२) क्रोध मनुष्य का न जीत सकनेवाला वैरी है, और लोभ ही अनेक दुःखों की जड़ है।

(३) इंद्रियों को रोकना ही धीरज है। मन के मैल

को छोड़ देना ही नहाना है, और जीवों को बचाना ही दान है।

(४) धर्म को जाननेवाला मनुष्य ही पंडित है, और ईश्वर को न माननेवाला मनुष्य मूर्ख है।

(५) जो लोग ऋणी नहीं बनते और इधर-उधर न भटक-कर अपने घर ही में रूखी रोटी से गुज़र करते हैं, वे ही सच्चे सुखी हैं।

(६) मनुष्य रोज़ ही मरते हैं, यह देखकर भी मनुष्य बुरे कामों में लगकर यह सोचता है कि मैं जीता रहूँगा और सुख भोगूँगा, भला इससे बढ़कर अचंभे की बात और क्या हो सकती है?

(७) हर एक मत अलग-अलग है। सब वेद अलग-अलग हैं। एक भी कोई मुनि ऐसे नहीं, जिनका मत प्रमाण के तौर पर मान लिया जाय। धर्म का सार बहुत गहरा है। इसलिये हमको चाहिए कि बड़े आदमियों ने जैसे अच्छे-अच्छे काम किए हैं, वैसे ही हम भी करें।"

धर्मराज युधिष्ठिर की ये अच्छी-अच्छी बातें सुनकर धर्म-रूपी बगुला बहुत प्रसन्न हुआ।

ग्यारहवाँ अध्याय

इस प्रकार पांडवों ने वनवास के दुःख भोगकर बारह वर्ष पूरे किए। अब एक वर्ष उनके छुपकर रहने का आया। इसलिये धर्मराज युधिष्ठिर इस समय द्रौपदी और भाइयों के साथ गुप्त-रूप बनाकर मत्स्य-देश में विराट् राजा के घर गए। वहाँ हर एक ने अपना नक़ली नाम रखकर राज-महल में नौकरी कर ली। युधिष्ठिर अपना 'कंक' नाम रखकर राज-सभा में मंत्री का काम करने लगे। भीमसेन 'वल्लभ' नाम से रसोइया बने। अर्जुन स्त्री का रूप बनाकर 'वृहन्नला' के नाम से रनिवास में स्त्रियों को नाचने-गाने की शिक्षा देने लगे। नकुल और सहदेव ने ग्वाले बनकर काम करना शुरू किया। द्रौपदी सैरंध्री का रूप बनाकर राजरानी की नौकरानी हुई। इस प्रकार सभी अपने-अपने नक़ली नाम रखकर अलग-अलग काम पर तैनात हुए।

इस तरह पांडवों के मुसीबत के दिन बीतने लगे। राजा विराट् का साला कीचक बड़ा व्यसनी था। एक दिन उसने द्रौपदी की तरफ़ बुरी नज़र डाली। महावीर भीमसेन इस बात को जान गए। उन्होंने एक दिन आधी रात को उसे मार डाला। कीचक के मर जाने से उसके भाई बड़े ग़ुस्से में हुए और द्रौपदी को निकालने की कोशिश करने लगे। यह बात भी भीमसेन

को मालूम हुई। भला आज तक उन्होंने किसका क्रोध सहा था। वे फ़ौरन् ही कीचक के भाइयों पर टूट पड़े, और घड़ी-भर में उन्हें मारकर इस लोक से बिदा कर दिया।

धीरे-धीरे पांडवों के अज्ञात-वास का समय पूरा होने को आया। इसी समय त्रिगर्त-देश के राजा सुशर्मा ने, अपनी फ़ौज लेकर गौओं को ले जाने के लिये विराट्-नगर पर चढ़ाई कर दी। फ़ौज नगर में घुस आई। इधर राजा विराट् की फ़ौज भी तैयार हुई। दोनो ओर की फ़ौज में ख़ूब लड़ाई हुई। अंत में लड़ते-लड़ते विराट् राजा हार गए। सुशर्मा उनको क़ैद कर अपने डेरे में ले गया। बूढ़े विराट्-नरेश की कुछ भी नहीं चलने पाई।

यह देख धर्मराज युधिष्ठिर को दया आ गई। उन्होंने उसी समय भीमसेन को बुलाकर कहा—"भाई, हम लोग विराट् के घर में रहते हैं। इस समय उनकी मदद करना हमारा धर्म है। अब तुम जाकर शत्रु के हाथ से उनको छुड़ाओ।"

भीमसेन ने भाई की आज्ञा पाकर लड़ाई की पोशाक पहनी, और सुशर्मा के डेरे में जाकर विराट् राजा को छुड़ाया। इसके बाद वे सुशर्मा के बाल पकड़कर उसे युधिष्ठिर के पास ले आए। धर्मराज युधिष्ठिर ने सुशर्मा से कहा—"अन्याय का भला कोई ठिकाना है। तुम इस बात को शायद बिल्कुल ही भूल गए कि संसार में न्याय भी कोई चीज़ है, और बुरे कामों का नतीजा बुरा ही होता है। अब मैं आपसे कहता हूँ

कि ऐसा काम कभी भूलकर भी मत करना।" यह कहकर महाराज युधिष्ठिर ने सुशर्मा को बिदा किया।

इसके दूसरे दिन दुर्योधन अपनी सेना को लेकर विराट् राजा की गौएँ हरने को आया। यह ख़बर विराट् के पुत्र 'उत्तर' के कानों में पड़ी। वह बृहन्नला को साथ लेकर लड़ाई के लिये गया। परंतु कौरवों की सेना को देखकर डर गया। और घर की ओर भागने को तैयार हुआ। यह देखकर अर्जुन अपनी असली पहचान बताते हुए बोले—"उत्तर! मैं अकेला ही सब को हरा सकता हूँ। तुम डरो मत। लड़ाई में पीठ दिखाकर भाग जाना क्षत्रियों का काम नहीं है। तुमको यहाँ से कभी नहीं जाना चाहिए।"

अर्जुन को पहचानकर उत्तर के मन में बड़ी प्रसन्नता हुई। उसकी नसों में वीरता की बिजली दौड़ गई। अब वह जीतने के लिये अर्जुन के साथ लड़ाई में गया। इसके बाद यह हुआ कि अर्जुन ने सबको हरा दिया। और उत्तर के साथ वे ख़ुशी-ख़ुशी घर को लौटे।

इधर विराट्-राजा ने पुत्र का हाल जानने के लिये आदमी भेजे, और आप ख़ुद युधिष्ठिर के साथ जुआ खेलने लगे। कुछ देर में मनुष्यों ने लौटकर ख़बर दी—"महाराज, राजकुमार उत्तर आनंद में हैं, और कौरवों को उन्होंने बात-की-बात में हरा दिया है।" राजा इस ख़बर से बड़े प्रसन्न हुए, और पुत्र की बड़ाई करने लगे। परंतु धर्मराज युधिष्ठिर ने कहा—

"महाराज, वृहन्नला के कारण ही आपके पुत्र जीते हैं। मेरा ख़याल है कि यदि वृहन्नला न होता, तो आपके पुत्र जीत नहीं सकते।"

परंतु युधिष्ठिर की इस बात से विराट्-राजा नाराज हो गया। और बोला—"तो क्या मेरे पुत्र को तुमने यों ही समझ रक्खा है?"

युधिष्ठिर बोले—"यह मैं नहीं कह सकता, परंतु लड़ाई में जीतने का कारण वृहन्नला ही है।" बार-बार वृहन्नला का ज़िक्र सुनकर विराट्-राजा के क्रोध का ठिकाना नहीं रहा। उसने बहुत नाराज़ होकर धर्मराज युधिष्ठिर के नाक पर इतने ज़ोर से मुक्का मारा कि उनको नाक से बेतरह ख़ून बहने लगा। यह देखकर द्रौपदी एक सोने के बर्तन में उस ख़ून को लेने और युधिष्ठिर की सेवा करके आराम पहुँचाने लगी। अर्जुन का संकल्प था कि यदि विना लड़ाई के कोई आदमी मेरे बड़े भाई युधिष्ठिर के ख़ून को निकालेगा, तो मैं उसके प्राण ले लूँगा। दयावान् युधिष्ठिर को यही चिंता हुई। उन्होंने विराट् के प्राण बचाने के लिये यह उपाय निकाला कि जब वृहन्नला और उत्तर घर आवें, तो दो रोज़ तक वे उनसे न मिलें। यही हुआ। वृहन्नला-रूपी अर्जुन उत्तर के साथ घर आए। घर आने पर उनको यह बात बताई गई। उत्तर अपने महलों में गए। राजा ने उनको गले से लगाकर लड़ाई का हाल पूछा। राजकुमार उत्तर बोला—"हमारे यहाँ गुप्त-

वेश में जो लोग रहते हैं, उन्होंने मुझे बड़ी मदद पहुँचाई है, जिसमें खास तौर पर आप यह समझ लें कि बृहन्नला नाम के अर्जुन ही ने कुरु-सेना को हराकर जीत पाई है।"

यह सुनकर विराट् बड़े अचंभे में हुआ। वह हाथ जोड़कर महाराज युधिष्ठिर से प्रार्थना करने लगा—"महाराज, मुझे क्षमा कीजिए। मैंने अनजाने अपराध किया है। आप मुझे कृपाकर क्षमा करें।" युधिष्ठिर हँसकर बोले—"मैंने पहले से ही आपको क्षमा कर दिया है। आप किसी प्रकार की चिंता न करें।" धन्य युधिष्ठिर! धन्य! ऐसे क्षमावान् मनुष्य संसार में बहुत कम होते हैं।

इसके बाद विराट् फिर बोला—"मैंने नहीं जाना था कि आप पांडव हैं। मैंने विना जाने आपको अपने काम में लगा लिया है। इसका मुझे बड़ा दुःख है।" यह कहते हुए राजा विराट् बहुत दुःख प्रकट करने लगा।

धीरे-धीरे पांडवों के साथ विराट् के परिवार की जान-पहचान बढ़ गई। विराट्-राजा ने अपनी कन्या उत्तरा का विवाह अर्जुन के साथ कर देने का विचार किया, और अपना यह विचार महाराज युधिष्ठिर के सामने रक्खा। परंतु महावीर अर्जुन ने यह बात नहीं मानी। वे बोले—"यह विवाह होने का नहीं है, क्योंकि मैं उत्तरा का गुरु रह चुका हूँ। वह मेरी शिष्या है, अतः बेटी के बराबर है। उसको मैं किसी मत से भी नहीं विवाह सकता। मेरी स्त्री श्रीकृष्ण की बहन सुभद्रा

है। उसके पेट से अभिमन्यु नाम का मेरे एक पुत्र है। यदि आप चाहें, तो मेरे इस पुत्र के साथ उत्तरा का विवाह कर सकते हैं।"

अर्जुन की यह राय युधिष्ठिर आदि सभी ने बड़े आनंद के साथ मान ली। इसके बाद बड़ी धूम-धाम से उत्तरा और अभिमन्यु का विवाह हो गया।

विवाह हो जाने पर धर्मराज युधिष्ठिर ने कौरवों से पाँच भाइयों के वास्ते ५ गाँव लेने और उनसे मेल करने की इच्छा से श्रीकृष्ण को हस्तिनापुर भेजा। श्रीकृष्ण ने वहाँ जाकर सब लोगों के सामने धृतराष्ट्र से कहा—"महाराज, पांडवों के तेरह वर्ष बीत चुके हैं। अब आधा राज्य और आधा धन उनको मिलना चाहिए। अब आप न्याय करके उनके दिलों में आनंद फैलावें।" इसके बाद श्रीकृष्ण फिर बोले—"महाराज, और सुनिए, युधिष्ठिर आधे राज्य के बदले सिर्फ़ पाँच गाँव पाँचो भाइयों के लिये लेकर आपसे मेल कराना चाहते हैं। मैं आज उन्हीं की तरफ़ से आप के पास आया हूँ।"

श्रीकृष्ण की यह बात धृतराष्ट्र, भीष्म, विदुर आदि कौरवों ने मान ली, और वे इस फ़ैसले से राज़ी भी हुए। परंतु कुल-कलंक दुर्योधन किसी प्रकार इस बात से राज़ी नहीं हुआ। बोला—"पाँच गाँव देने की बात तो दूर है, विना लड़ाई के मैं एक सुई की नोक के बराबर ज़मीन भी पांडवों को नहीं दूँगा।"

यह सुनकर श्रीकृष्ण क्रोध-भरी आवाज़ से बोले—"तो बहुत जल्दी लड़ाई शुरू होगी, और कौरवों के वंश का नाश होगा।"

यह कहकर वे हस्तिनापुर से विराट्-राजा के घर आ गए, और युधिष्ठिर से सब बातें कहीं। धर्मराज युधिष्ठिर पहले से ही जानते थे कि दुर्योधन विना लड़ाई के और किसी तरह भी हमारी प्रार्थना पूरी नहीं करेगा। अब इस दशा में उन्होंने लड़ाई करना ही ठीक समझा।

इस बड़ी लड़ाई के लिये वे राजाओं से सहायता की प्रार्थना करने लगे। इधर दुर्योधन भी लड़ाई की तैयारी में लगा।

बारहवाँ अध्याय

युद्ध ठन गया। जो दिन युद्ध का ठहरा, उस दिन दोनो ओर की सेना लड़ाई की पोशाक से सजकर कुरु-क्षेत्र में खड़ी हुई। महावीर भीष्म कौरवों की सेना के सेनापति बने। शंखों के बजने, रथों के छमछमाने, हाथियों के चिंघाड़ने और घोड़ों के हिनहिनाने से लड़ाई का सारा मैदान गूँज उठा। श्रीकृष्ण अर्जुन को साथ लिए रथ पर बैठकर कौरवों की सेना में आए, परंतु अपने सगे संबंधियों को सामने देखकर अर्जुन का हृदय सुन्न हो गया। उन्होंने कौरवों पर अस्त्र चलाने से इनकार करते हुए श्रीकृष्ण से कहा—"हे कृष्ण, ये सब मेरे सगे हैं। इनको मारकर मैं जीते रहने की इच्छा नहीं करता।" ऐसा कहते-कहते अर्जुन का शरीर काँपने लगा। उनके हाथ से गांडीव धनुष भी खिसक पड़ा। यह देखकर श्रीकृष्ण ने उस समय उनको संसार की असारता का उपदेश करके उनका मोह दूर किया। जो-जो उपदेश श्रीकृष्ण ने अर्जुन को दिए, वही अब 'गीता' के नाम से पुकारे जाते हैं। गीता हिंदुओं का सबसे ऊँचा ग्रंथ है, और उसे सब मानते हैं।

श्रीकृष्ण के उपदेश से अर्जुन को हिम्मत आई और सारा मोह दूर हट गया। वे नए बल से बलवान् हो अपना गांडीव धनुष हाथ में लेकर फिर लड़ाई करने को तैयार हुए।

दोनो दलों में खूब लड़ाई होने लगी। दोनो तरफ़ के बहुत-से लोग आपस में हथियार चलाने और हथियारों के लगने से मरने लगे। दसवें दिन कौरवों के सेनापति भीष्म पितामह अर्जुन के बहुत-से बाण लगने से ज़मीन पर गिर पड़े। उनके शरीर में इतने बाण लगे कि ज़मीन पर गिरते समय उनके लिये बाणों की शय्या बन गई। अब कौरवों ने द्रोणाचार्य को सेनापति बनाया। द्रोणाचार्य भी मामूली वीर नहीं थे, बड़े बलवान् थे; इसलिये आचार्य महोदय पंद्रह दिनों तक पांडवों से लड़कर मारे गए। जब लड़ाई में उनको कोई जीत नहीं पाया, तो पांडवों ने उनको कमज़ोर करने के लिये एक उपाय किया। उस समय अश्वत्थामा नाम का एक हाथी लड़ाई में मारा गया। श्रीकृष्ण की आज्ञा से भीम यह कहते हुए चिल्ला उठे कि—"अश्वत्थामा मारा गया है"—"अश्वत्थामा मारा गया है"। द्रोणाचार्य के पुत्र का नाम भी अश्वत्थामा था। इसलिये वे अश्वत्थामा का मारा जाना सुनते ही घबरा उठे। सोचा कि सचमुच ही मेरा प्यारा पुत्र अश्वत्थामा मारा गया है। पुत्र का प्यार बड़ा अजीब होता है, इसी से द्रोणाचार्य बड़े दुःखी हुए। परंतु उन्होंने भीमसेन के वचनों पर पूरा विश्वास न कर युधिष्ठिर से पूछा—"युधिष्ठिर, आप ही से सच्ची बात का पता लगेगा। हे धर्मराज, बताइए, क्या सचमुच मेरा पुत्र अश्वत्थामा मारा गया है?" युधिष्ठिर सबके संतोष के लिये बोल उठे—"आचार्य, सचमुच ही अश्वत्थामा मारा गया है?"

यह कहते ही युधिष्ठिर अपनी कमज़ोरी पर बहुत पछताने लगे। उन्होंने उसी समय फिर दबी आवाज़ में कहा—"हाथी।" परंतु यह आख़िरी शब्द द्रोण के कानों में नहीं पहुँचा।

इसलिये मेरा पुत्र सचमुच ही मारा गया है, यह विश्वास कर द्रोणाचार्य बहुत दुःखी हुए। दुःख के मारे उनको लड़ने की इच्छा बिल्कुल चली गई, और वे शत्रुओं के वश में होने के अस्त्र छोड़कर ख़ाली हाथ रथ पर बैठ गए। इसी अवसर में अर्जुन ने उनके शरीर में अस्त्र मारे और धृष्टद्युम्न ने रथ पर चढ़कर तलवार से उनका सिर काट डाला। द्रोणाचार्य मर गए। उनके मर जाने से सभी कौरवों को बड़ा दुःख हुआ। पहले जो उनको युद्ध जीतने की आशा थी, वह अब जाती रही।

द्रोणाचार्य के मर जाने पर महावीर कर्ण सेनापति बनकर घमासान लड़ाई लड़ने लगे। उन्होंने पहले अर्जुन के सिवाय सब पांडवों को लड़ाई में हरा दिया। अंत में भीम और अर्जुन कर्ण के मारने की प्रतिज्ञा करके लड़ाई के मैदान में आए। लड़ते-लड़ते भीनसेन ने कर्ण के सामने ही पापी दुःशासन का हृदय चीरकर उसका लोहू पिया। तेरह वर्ष पहले भीमसेन ने जुआ खेलते समय जो प्रतिज्ञा की थी, वह पूरी हुई। दुःशासन मारा गया। दुःशासन के मारे जाने पर अर्जुन ने कर्ण के साथ लड़ाई करके थोड़ी ही देर में उसे ज़मीन पर गिरा दिया। कर्ण के मर जाने से कौरवों की सेना डर गई, क्यों-

कि अब उनका कोई जोरदार मालिक नहीं रहा। इसलिये कई सिपाही डरकर भागने लगे।

कर्ण की मात से दुर्योधन की जीत की आशा एकदम जाती रही। इसी समय कृपाचार्य ने उससे कहा कि पांडवों के साथ मेल कर लो, परंतु दुष्ट दुर्योधन ने उनकी बात नहीं मानी। किसी ने सच कहा है, जब मरने के दिन आते हैं, तब बुद्धि भी उल्टी हो जाती है। यही हाल दुर्योधन का हुआ। वह कृपाचार्य की बात न मानता हुआ बोला—"कृपाचार्य, पांडव लोग वन-वास का दुःख और द्रौपदी के अपमान की बात याद कर कभी हमारे साथ मेल करने को तैयार न होंगे, और मैं इतने धन-दौलत का मालिक होकर क्यों डरपोकों की तरह मेल के लिये युधिष्ठिर से कहूँ ? राजपूतों के कुल का जो धर्म है, उस वीर-धर्म को मैं कभी नहीं छोड़ूँगा।"

यह कहकर दुर्योधन ने मद्र-देश के राजा शल्य को सेना-पति बनाया। फिर लड़ाई होने लगी। अब तक हम युधिष्ठिर को केवल धर्मराज और दयावान् ही कहते आए हैं, पर वे खाली धर्मवीर ही नहीं थे, बल्कि लड़ाई के हुनर में भी उन्होंने बड़ा नाम पैदा किया था। वे अस्त्र लेकर खड़े हुए, और एक ही बार में उन्होंने कौरवों के सेनापति शल्य को छेद डाला। त्रिगर्त का राजा सुशर्मा और शकुनि भी पांडवों के हाथ से मारे गए। अब बचे द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा और कुछ कौरवों की सेना। सो ये सब लड़ाई के मैदान से भाग निकले।

सब के अंत में कौरवों के कुल का नाश करनेवाला दुर्योधन भी कुछ उपाय न देखकर शत्रुओं के हाथ से बचने के लिये द्वैपायन-गुफा में जा छिपा। परंतु पांडव उसका पीछा छोड़ने-वाले कब थे। वे उसको ढूँढने के लिये निकले, और गुफा की ओर जाने लगे। दुर्योधन ने जब देखा कि पांडव मेरी ओर आ रहे हैं, तो वह अपने बचाव के लिये कुंड में कूद पड़ा। पांडव वहाँ भी जा पहुँचे। युधिष्ठिर ने उसे आधा जल में डूबा देखकर कहा—"दुर्योधन, अब डरपोक बनकर क्यों भागते हो ? यह काम तुम्हारे-जैसे वीरों को शोभा नहीं देता। आओ, लड़ाई में लग जाओ।"

इस प्रकार जब युधिष्ठिर ने दुर्योधन को युद्ध के लिये लल-कारा, तो वह गदा हाथ में लेकर जल से निकला, और बोला—"महाराज, मेरी सारी सेना मारी गई है। मेरे पास अब कोई सहारा नहीं। आप अब किस तरह मुझे लड़ाई के लिये बुलाते हैं ! अब तो आप चिंता छोड़कर इस पृथ्वी के राजा बनें और राज्य का सुख भोगें।"

युधिष्ठिर सदा के वैरी दुर्योधन की बात सुनकर कुछ हँसते हुए बोले—"तुमने सदा ही हमारी बुराई की है। तुमने यह भी तो कहा था कि मैं बिना लड़ाई के सुई की नोक के बरा-बर भी ज़मीन नहीं दूँगा। तो आज बिना लड़ाई के हम भी क्यों तुम्हारा राज्य लें ? हाँ, तुम अकेले हो, यह बात ज़रूर है। इसके लिये हमें तुम पर दया आती है। इसलिये तुम

हमारे इन पाँचों भाइयों में से जिसके साथ चाहो, लड़ो। इस लड़ाई में यदि तुम जीतोगे, तो तुम्हारा राज्य तुम्हारे ही पास रहेगा, मैं उसको कभी नहीं लूँगा।"

इसके बाद दुर्योधन की इच्छानुसार भीमसेन उसके साथ लड़ने को राज़ी हुए। गदा-युद्ध ठहरा। दोनों में गहरी लड़ाई होने लगी। लोग तमाशा देखने लगे। ख़ूब लड़ाई हुई। आख़िर में भीमसेन ने अपनी गदा की चोट से दुर्योधन की जाँघ तोड़कर उसको ज़मीन पर डाल दिया। बाद को भीमसेन बोले—"पापी, तेरह वर्ष पहले जब तूने जुए के खेल में द्रौपदी की साड़ी खींचते हुए बेशर्मी दिखाई थी, तब मैंने जो प्रतिज्ञा की थी, वह पूरी हुई।" यह कहकर भीमसेन दुर्योधन के माथे पर लातें मारने लगे। यह बात धीर-वीर युधिष्ठिर को अच्छी न लगी। उन्होंने नाराज़ होकर कहा—"भाई, तुमने जो प्रतिज्ञा की थी, वह पूरी हो गई। परंतु अब तुम जीते हुए राजा के माथे पर लातें मारकर बड़ा बुरा काम कर रहे हो। कुछ भी हो, दुर्योधन हमारा भाई है। क्रोध में होकर ऐसा काम करना तुम्हारे-जैसे बड़े आदमी को शोभा नहीं देता। न यह काम न्याय से अच्छा है, न धर्म से; इसलिये अब इस काम को छोड़ दो।" युधिष्ठिर के इन ज्ञान-भरे वचनों का भीमसेन ने चुपचाप पालन किया।

जो हो, पांडव इतने दिनों के बाद सुखी हुए। अब उनकी ख़ुशी का पार न रहा। उस दिन श्रीकृष्ण पांडवों को लेकर

दृशद्वती नदी के किनारे रात बिताने को गए। और द्रौपदी के पांचो पुत्र तथा पांडवों की कुछ सेना डेरे में रही। यह बात पहले कही जा चुकी है कि द्रोणाचार्य को पांडवों ने धोखा देकर मार डाला था। जब से द्रोणाचार्य मारे गए, तभी से उनके पुत्र अश्वत्थामा बदला लेने की ताक में थे। अब उनको अच्छा मौक़ा मिल गया। वे हाथ में तलवार लेकर आधी रात के समय पांडवों के डेरे में गए। उस समय द्रौपदी के पाँचो पुत्र और सब सेना गहरी नींद में अचेत सो रही थी। अश्वत्थामा ने पहुँचकर तेज़ तलवार से एक-एक करके सबका गला काट डाला। डेरे में लोहू की धारा बहने लगी।

दूसरे दिन सबेरे ही यह ख़राब ख़बर दृशद्वती के किनारे पांडवों के पास पहुँची। द्रौपदी इस दुःखदायी समाचार को सुनकर एकदम घबरा उठी। उस समय श्रीकृष्ण ने उसको कई तरह से समझाया। और वे अश्वत्थामा को मारने के लिये तैयार हुए। परंतु द्रौपदी ने इस समय बड़ी बुद्धिमानी का काम किया। वह इस भारी दुःख में भी धीरज रखते हुए बोली—"हे श्रीकृष्ण, मेरा यह दुःख अब मिटने का नहीं है। पुत्रों का दुःख मेरे हृदय में सदा बना रहेगा। इसलिये इस समय जो मैं बात कहती हूँ, उसे आप मानें।"

श्रीकृष्ण ने कहा—"मैं ज़रूर तुम्हारी बात मानूँगा।" तब द्रौपदी ने कहा—"अश्वत्थामा के माथे में जो मणि है, आप यदि

उसे लाकर धर्मराज के मुकुट में रखवा सकें, तो मैं इस दुःख में भी कुछ शांति पा सकती हूँ।"

द्रौपदी की इच्छा जानकर श्रीकृष्ण अश्वत्थामा के पास गए, और उससे कहा—"तुम बड़े पापी और निर्दयी हो। बच्चों से तुम्हें क्या वैर निकालना था। ऐसा धोका देना क्या तुम्हारे लिये अच्छा लगता है? द्रोण-सरीखे आचार्य के पुत्र होकर ऐसे पाप का काम करना तुम्हारे लिये अच्छा नहीं है। तुम आचार्य के कुल में कलंक लगानेवाले पैदा हुए हो।"

इस प्रकार बहुत बुरा कहने के बाद श्रीकृष्ण ने अश्वत्थामा से उसके माथे की मणि ले ली, और लाकर द्रौपदी को सौंप दी।

इधर दुर्योधन ने लोहू के उल्टियाँ करते-करते हमेशा के लिये आँखें मूँद लीं। राज-पाट सब यहीं धरा रहा, और सब बुराई उसके नाम के साथ रह गई। यदि वह अच्छे काम करता और भाइयों से हिल-मिलकर रहता, तो आज उसकी ऐसी हालत क्यों होती। पर जैसा उसने किया, वैसा ही फल पाया, और वह हमेशा के लिये अपनी बुराई संसार में छोड़ गया। मनुष्य को हमेशा अच्छे काम करना चाहिए और किसी से वैर न करना चाहिए।

तेरहवाँ अध्याय

महाराज धृतराष्ट्र ने जब सुना कि उनके सौ पुत्र लड़ाई में मारे गए, तब वे दुःखी होकर ज़मीन पर गिर पड़े। उस समय बुद्धिमान् विदुर कई उपदेशों से उनका दुःख दूर करने की कोशिश करने लगे। परंतु धृतराष्ट्र का दुःख रत्ती-भर भी कम नहीं हुआ। वे दुर्योधन आदि पुत्रों के नाम ले-लेकर विलाप करने लगे। अंत में व्यासजी वहाँ आए। व्यासजी ने कई उपदेशों से धृतराष्ट्र का दुःख दूर करने की कोशिश की, और वे धृतराष्ट्र के दुःखी मन को कुछ शांत भी कर सके।

अंतर में धर्मराज युधिष्ठिर, व्यासजी की आज्ञा से, धृतराष्ट्र और कौरवों की स्त्रियों के साथ लड़ाई का मैदान देखने गए। कौरवों की स्त्रियों ने वहाँ पहुँचकर देखा कि कोई उनके भाई हैं, कोई उनके पिता हैं, कोई उनके पति हैं, सभी लोहू से लिपटे हुए ज़मीन पर मरे पड़े हैं, और कुत्ते, कौवे, सियार, गीदड़ उनका मांस खा रहे हैं। यह डरावना दृश्य देखकर कौरवों की स्त्रियाँ हाहाकार करती हुई अपनी-अपनी सवारियों से नीचे गिरने लगीं। उनके दुःख का पार न रहा, और वे दुःख के मारे बेसुध हो गईं। गांधारी दुर्योधन की बुरी हालत देखकर श्रीकृष्ण से बोली—"हे कृष्ण, आज मैं क्या देख रही हूँ। यह देखो, ग्यारह अक्षौहिणी सेना का मालिक राजा

दुर्योधन लोहू-लुहान होकर धूल में मरा पड़ा है! यह देखो, द्रोण, कर्ण आदि वीरवर बाणों से छिदे हुए पड़े हुए हैं! आज उनके शरीर के मांस से सियार, कुत्ते, कौवों की भूख बुझाई जा रही है। हाय-हाय! यह बुरा दृश्य आज मुझको देखना पड़ा। पुत्र दुर्योधन की कुमति का ही कुफल आज इन आँखों के सामने आया है। सच है, सत्य की हमेशा जीत हुआ करती है। दुर्योधन लड़ाई के पहले जब मेरे पास आशीर्वाद लेने को आया था, तब मैंने उससे कहा था कि जहाँ धर्म होता है, वहीं जीत हुआ करती है।' आज मेरे ये वचन सफल हो गए। पांडव के पुत्रों की जीत हुई, यह अच्छी बात है। कृष्ण, इसके लिये मैं दुःखित नहीं हूँ। परंतु हे कृष्ण, तुम बड़े ज्ञानी हो, बड़े बलवान् हो, यदि तुम चाहते तो कौरव-पांडवों को इस बड़ी लड़ाई से रोक सकते थे; परंतु तुमने ऐसा किया नहीं। तुम्हारे ही कारण आज सैकड़ों स्त्रियाँ अपने घर के आदमियों को खोकर दुःख से रो रही हैं, तुम्हारे ही लिये आज कुरुक्षेत्र की धरती पर लोहू की धारा बह रही है। तुम्हीं ने यह सब मटियामेट किया है।"

इस प्रकार सब बातें कहकर धृतराष्ट्र की स्त्री गांधारी श्रीकृष्ण को दोष लगाने लगी। श्रीकृष्ण ने पहले समझौते की कोशिश ज़रूर की थी, यह बात हम मानेंगे। वे पांडवों की भलाई के लिये धृतराष्ट्र के पास गए थे, और उनसे न्याय करने की प्रार्थना भी की थी। इस प्रकार श्रीकृष्ण ने लड़ाई रोकने के लिये बहुत

कोशिश की थी; परंतु जब दुर्योधन पांडवों को 'सुई की नोक के बराबर भी ज़मीन' देने को राजी नहीं हुआ, तब लड़ाई छिड़ गई। इस हालत में लड़ाई होना ज़रूरी था, और इसे न्याय की लड़ाई ही मानना होगा। श्रीकृष्ण ने तो न्याय को ही पकड़ा था, इसमें उनका दोष ही क्या है?

जो हो, पांडवों ने अपने सगे आदमियों के मरने का शोक-चिह्न धारण किया। शोक-चिह्न उसे कहते हैं, जिसमें कुछ दिनों तक काले कपड़े पहने जाते हैं। इसके बाद धृतराष्ट्र की इच्छानुसार युधिष्ठिर ने दुर्योधन आदि की क्रिया की। और श्राद्ध किए।

श्राद्ध के काम से निपटकर धर्मराज युधिष्ठिर उदास मन से हस्तिनापुर आए, हस्तिनापुर आकर उन्होंने यह तय किया कि राज करना मुझे मंज़ूर नहीं है, मैं फिर जोगियों की तरह जंगल में रहकर अपना जीवन बिताऊँगा। परंतु उनके भाइयों ने उनकी एक नहीं मानी। वे बार-बार उनसे कहने लगे कि आप ज़रूर राज्य का काम अपने हाथ में लीजिए। इधर नारदजी व्यासजी और श्रीकृष्ण ने भी युधिष्ठिर को बहुत कुछ समझाया। इन सबके कहने से युधिष्ठिर ने राज्य करना मंज़ूर किया। राज-तिलक हुआ। अब युधिष्ठिर हस्तिनापुर की राजगद्दी के मालिक हो गए।

अब उन्होंने विचार किया कि राज्य करने की अच्छी-अच्छी बातें भीष्मपितामह से चलकर पूछनी चाहिए। यह विचारकर

वे श्रीकृष्ण के साथ भीष्मपितामह के पास गए, और उनसे सब बातें पूछीं। भीष्म इस समय भी बाणों की शय्या पर सो रहे थे। राज-नीति की उनको जितनी अच्छी-अच्छी बातें मालूम थीं, उतनी किसी को भी मालूम नहीं हो सकतीं। भीष्म मामूली आदमी नहीं थे, वे बड़े बुद्धिमान् और समझ-उदार थे। इसीसे इन्होंने युधिष्ठिर को राज्य की, घर-बार की, संसार की, धर्म की अनेक अच्छी-अच्छी बातें बताईं, जिन्हें सुनकर युधिष्ठिर बहुत ख़ुश हुए।

इस प्रकार ज्ञान की अनेक बातें समझाकर भीष्म ने भागीरथी नदी के किनारे अपना शरीर छोड़ दिया। पांडव लोग उनकी क्रिया करके हस्तिनापुर आए। भीष्मपितामह के मर जाने से युधिष्ठिर का दुःख बहुत बढ़ गया। इसलिये वे शांति पाने का उपाय सोचने लगे। अंत में श्रीकृष्ण और पुरोहितों की सलाह से उन्होंने अश्वमेध-यज्ञ करने का विचार किया। वीर अर्जुन को एक घोड़े के साथ भारत में कई जगह भेजा गया। अर्जुन वहाँ कई राजाओं से अपार धन लेकर हस्तिनापुर लौटे। बड़ी धूमधाम से अश्वमेध-यज्ञ किया गया। इस काम से धर्मराज युधिष्ठिर का दुःख कितना दूर हो गया था, यह बात नहीं कही जा सकती।

राज-सिंहासन पर बैठकर युधिष्ठिर अच्छी तरह राज्य करने लगे। उनके न्याय और प्रेम से राज्य के सब लोग उनको बहुत चाहने लगे। युधिष्ठिर सचमुच धर्मराज हैं, यह बात

सबको अच्छी तरह मालूम हो गई। असल में युधिष्ठिर में इतने गुण थे कि वे कहे नहीं जा सकते। उनके मन में सदा प्रेम बना रहता था। वे सबको बराबर समझते थे। वे किसी को बिना कारण सताते नहीं थे। किसी को दुःख देना वे बहुत बुरा समझते थे। इतने बड़े राज्य के राजा होकर भी उनको बिल्कुल अभिमान नहीं था। हालाँकि उनको राज का बहुत काम रहता था, तो भी वे धृतराष्ट्र और गांधारी को शांति पहुँचाने की बहुत कोशिश करते थे, और उनको माता-पिता की तरह मानते थे। धृतराष्ट्र और गांधारी भी धर्मराज के बहुत अच्छे बर्ताव से प्रसन्न होकर उनको पुत्र के बराबर प्यार करने लगे।

इस प्रकार युधिष्ठिर को राज करते १५ वर्ष बीत गए। एक बार धृतराष्ट्र ने उनके पास आकर वन में जाने की बात कही। धृतराष्ट्र वन को जाते हैं, यह बात जानकर युधिष्ठिर को बहुत दुःख हुआ। वे धृतराष्ट्र को बहुत समझाने लगे। परंतु धृतराष्ट्र ने किसी तरह नहीं माना, और युधिष्ठिर से कहा—"हे युधिष्ठिर, बुढ़ापे में राजपूतों के लिये जंगल में रहना ही अच्छा है। अब मैं भगवान् के भजन में अपना बाक़ी जीवन बिताऊँगा, यही मेरी बड़ी भारी इच्छा है। अब तुम मुझको प्रसन्न होकर बिदा दो।"

इसके बाद धृतराष्ट्र ने राज्य करने की अच्छी-अच्छी बातें युधिष्ठिर को सुनाईं, और सबसे बिदा लेकर तपस्या के लिये जंगल में चले गए। गांधारी, कुंती और विदुर भी उनके साथ

गए। धृतराष्ट्र जंगल में पहुँचकर कुरुक्षेत्र के पास व्यास के आश्रम में रहने लगे, और वहीं तपस्या में दिन-रात बिताने लगे। कुछ दिनों के बाद युधिष्ठिर अपने भाइयों के साथ धृतराष्ट्र के दर्शन करने वहाँ गए। उस समय, जब पांडव वहीं मौजूद थे, विदुर एक वृक्ष से झूलकर युधिष्ठिर के देखते-देखते मर गए। उनके मर जाने से पांडवों को बहुत दुःख हुआ। इसके बाद वे हस्तिनापुर आए, परंतु यह दुःख उनके मन से नहीं गया। यह दुःख तो था ही, पर उन्होंने एक और दुःख की बात सुनी। उन्होंने सुना कि महाराज धृतराष्ट्र, गांधारी और उनकी माता कुंती जलती आग में कूदकर मर गए हैं। इस दुःखदायी ख़बर को सुनकर पांडव लोग बहुत घबराए। अब उनको कोई सहारा नहीं रहा। अब वे अपने को बिना सहारे समझने लगे। उन्होंने शोक-चिह्न धारण किया, और सबके श्राद्ध किए।

धर्मराज युधिष्ठिर को राज करते-करते जब कुछ वर्ष और बीत गए, तब यदुवंश में बहुत बुराइयाँ पैदा हुईं। यह वही वंश है, जिसमें श्रीकृष्ण का जन्म हुआ था। यदुवंशी लोग शराब पीने लगे, और मस्त होकर बुरे-बुरे काम करने लगे। उनके इन बुरे कामों को देखकर श्रीकृष्ण को बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने यदुवंशियों की भलाई के लिये बहुत उपदेश दिए। परंतु जब देखा कि यों काम नहीं चलेगा, तब उन्होंने यदु-वंशियों को प्रभास-तीर्थ में जाने का हुक्म दिया। यदुवंशी

वहाँ गए, पर वहाँ भी वे शराब से मस्त होकर आपस में लड़ने और मरने लगे। यह सब हाल देखकर श्रीकृष्ण ने समझ लिया कि यदु-कुल का नाश अवश्य होगा। यह सोचकर वे पिता के पास जाकर बोले—"पिताजी, यदु-कुल की बुरी हालत हो गई है। अब इसका हाल आदमी भेजकर अर्जुन को मालूम कराना चाहिए, ताकि वे सारा हाल एक बार आकर आँखों से देख लें।"

पुत्र की प्रार्थना सुनकर वसुदेवजी ने अर्जुन के पास आदमी भेजा। इधर श्रीकृष्ण एक सुनसान जगह में जाकर एक पेड़ के नीचे बैठ गए, और आँखें मूँदकर परमार्थ की चिंता करने लगे। इसी समय एक शिकारी ने दूर से शिकार समझकर उन पर तीर चलाया। इस तीर के लगने से श्रीकृष्ण के प्राण निकल गए। शिकारी ने पेड़ के पास आकर देखा कि श्रीकृष्ण मेरे हाथ से मारे गए हैं। यह देखकर शिकारी बहुत घबराया। और उसको बहुत दुःख हुआ।

श्रीकृष्ण के पिता वसुदेवजी ने जिस आदमी को अर्जुन के पास भेजा था, उसका नाम दारुक था। दारुक ने हस्तिनापुर पहुँचकर यदुकुल का सारा हाल कहा। अर्जुन जल्दी से उसके साथ द्वारका में आए। आकर देखा कि पांडवों के सच्चे दोस्त श्रीकृष्ण मर चुके हैं। उनके दुःख में विधवा स्त्रियाँ बिलख-बिलखकर रो रही हैं। उनके इस रोने को सुनकर जानवरों को भी दुःख होता है। श्रीकृष्ण के विना द्वारका आज सुनसान

हो गई है। उनके विना अर्जुन को बहुत दुःख होने लगा, पर करते क्या ? अंत में अर्जुन स्त्रियों को समझा-बुझाकर हस्तिनापुर में लौट आए, और युधिष्ठिर से सब हाल कहा।

चौदहवाँ अध्याय

अर्जुन के मुख से यदुवंश के नाश और श्रीकृष्ण के मर जाने की बात सुनकर पांडवों को बड़ा दुःख हुआ। धर्मराज युधिष्ठिर को तो राज-सुख भोगने की इच्छा ही एकदम चली गई। उन्होंने सब भाइयों से कहा—"भाइयो, अब हमारा काम पूरा हो गया है। अब हमारे लिये महाप्रस्थान का समय आ गया है। इसलिये चलो, हम सब हिमालय पर्वत पर चलें।"

युधिष्ठिर की बात से चारों भाई राज़ी हुए। उन्होंने अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित को हस्तिनापुर का राजा बनाया, और आप पेड़ की छाल पहनकर, अच्छी घड़ी में, हमेशा के लिये राजधानी से चल दिए। उनको जाते देख नगर के सब लोग ज़ोर-ज़ोर से रोने लगे। पांडवों ने मीठे वचनों से सबको समझाकर शांति किया। फिर वे आगे बढ़ने लगे। इतने में एक कुत्ता आकर उनके पीछे लगा। उसको लौटाने के लिये पांडवों ने बहुत कोशिश की, पर वह किसी तरह भी नहीं फिरा। सबके आगे युधिष्ठिर, युधिष्ठिर के पीछे भीमसेन, भीमसेन के पीछे वीर अर्जुन, अर्जुन के पीछे नकुल, नकुल के पीछे सहदेव, सहदेव के पीछे द्रौपदी और सबके पीछे वह कुत्ता चलने लगा।

चलते-चलते ये सब पूर्व की तरफ़ एक समुद्र के किनारे पहुँचे। वहाँ एक बड़े भारी पुरुष ने आकर इनको रोकते हुए कहा—"पांडवो, मैं अग्नि हूँ। अर्जुन को जो काम करना था, वह पूरा हो गया है। अब वे गांडीव और अक्षय तूण छोड़ दें।" अर्जुन ने उसी समय दोनों चीजें अग्निदेव को दे दीं।

इसके बाद पांडव कई तीर्थों के दर्शन करते हुए हिमालय पर्वत पर चढ़ने लगे। द्रौपदी इस पर्वत की चढ़ाई के दुःख को किसी प्रकार न सह सकीं। थोड़ी दूर चढ़कर वह अचेत हो गिर पड़ी। भीमसेन ने धर्मराज युधिष्ठिर से पूछा—"महाराज, द्रौपदी ने तो जन्म-भर कोई पाप का काम नहीं किया, फिर इसकी यह हालत क्यों हुई?"

युधिष्ठिर बोले—"भले ही द्रौपदी के लिये हम सब बराबर थे, तो भी वह अर्जुन को बहुत प्यार करती थी, इसीसे इसका पतन हुआ।"

इसके बाद क्रमशः नकुल और सहदेव का पतन हुआ। भीमसेन ने धर्मराज ने उनके गिरने का कारण पूछा।

युधिष्ठिर बोले—"भाई, नकुल को विश्वास था कि पृथ्वी पर मेरे समान रूपवान् कोई नहीं है। इसी अहंकार से इसका पतन हुआ।"

यह कहकर युधिष्ठिर फिर पर्वत पर चढ़ने लगे। उन्होंने पीछे फिरकर देखा तक नहीं।

द्रौपदी और नकुल-सहदेव की मृत्यु से अर्जुन बहुत दुःखी हुए। उनके लिये पल-पल बीतना कठिन हो गया। वे मन-ही-मन श्रीकृष्ण के चरण-कमलों का ध्यान करने लगे। अंत में थोड़ी दूर जाकर उनका भी पतन हो गया। तब महावीर भीम ने बहुत दुःखी होकर युधिष्ठिर से पूछा—"दादा, अर्जुन बड़े सत्यवादी और सब गुणों की खान थे, फिर उनका पतन क्यों हुआ ?"

युधिष्ठिर ने उत्तर दिया—"भाई, अर्जुन को अपने बल का जैसा अभिमान था, वैसा वह प्रसिद्ध नहीं हो सका। इसी झूठे अभिमान के लिये उसका पतन हुआ।"

यह कहकर धर्मराज शांत मन से आगे बढ़ने लगे। इसी समय भीमसेन अचानक ज़मीन पर गिर पड़े। ज़मीन पर पड़े-पड़े ही उन्होंने ज़ोर से कहा—"महाराज, मेरा किस अपराध से पतन हुआ ?"

धर्मराज बोले—"भाई, तुम ख़ुद-मतलबी की तरह भोजन की चीज़ें औरों को न देकर ख़ुद ही खा जाया करते थे। इसी अपराध से तुम्हारा पतन हुआ।"

यह कहकर धर्म-पुत्र धीरे-धीरे पर्वत पर चढ़ने लगे। उस समय सिर्फ़ एक कुत्ता ही उनके साथ था।

थोड़ी दूर जाने पर देवताओं के राजा इंद्र युधिष्ठिर को मिले, और आगे आकर बोले—"महाराज, आप जल्दी ही इस रथ पर बैठकर स्वर्ग में पधारिए।"

धर्मराज ने कहा—"यह कुत्ता मेरे साथ आया है, इसलिये कृपा करके आप इसके साथ मुझे स्वर्ग में जाने की आज्ञा दीजिए। क्योंकि यदि अब मैं इसे छोड़ दूँ, तो बड़े अन्याय का काम होगा।"

इंद्र बोले—"महाराज, आज आप सिद्धि और अमरता पावेंगे, इसलिये इस कुत्ते को यहीं छोड़ दीजिए।"

तब धर्मराज युधिष्ठिर ने कहा—"मैं अपने सुख के लिये कभी इस कुत्ते को नहीं छोड़ूँगा, इसके विना अब मैं स्वर्ग की भी इच्छा नहीं करता। भक्त, कमज़ोर और शरण में आए हुए जीव की मैं जी-जान से रक्षा किया करता हूँ।"

धर्मराज युधिष्ठिर ये सब बातें कह ही रहे थे, इतने में उस कुत्ते ने अपना रूप बदलकर दूसरा रूप बना लिया, और कहा—"बेटा, मैं धर्म हूँ। तुम्हारी परीक्षा लेने के लिये ही मैं कुत्ते का रूप बनाकर तुम्हारे साथ आया था। अब मुझे मालूम हुआ कि तुम सचमुच धर्मात्मा हो, उदार हो, बुद्धिमान् हो और सब जीवों के लिये दयावान् हो। मैं अच्छी तरह समझ गया हूँ। हे धर्मराज, तुम्हारे बराबर धर्मात्मा आदमी स्वर्ग में भी मिलना कठिन है। तुम अब शरीर-समेत स्वर्ग में जाओ। वहाँ तुम ख़ूब आनंद और शांति पाओगे।"

धर्मराज स्वर्ग को गए। ऊपर कहा गया है कि उन्होंने कुरुक्षेत्र की लड़ाई में द्रोणाचार्य के पुत्र के लिये यह झूठ कह दिया था कि "अश्वत्थामा मारा गया है।" कहते हैं, इसी झूठ के लिये

इंद्र उनको थोड़ी देर के वास्ते नरक के डरावने रास्ते में होकर ले गए थे। झूठ का फल धर्मराज युधिष्ठिर को भी भोगना पड़ा। सच है, सचाई ही तप है और झूठ ही पाप है। झूठ का फल सभी को भोगना पड़ा है। इसलिये कभी झूठ नहीं बोलना चाहिए।

इसके बाद धर्मराज देवताओं के साथ मंदाकिनी के किनारे पहुँचे। वहाँ उन्होंने मंदाकिनी के साफ़ जल में स्नान किया, और उस जल में स्नान करने से वे बहुत ही स्वरूपवान् हो गए। इसके बाद वे अपने चारो भाई, द्रौपदी और सगे आदमियों के साथ मिलकर बड़े आनंद से स्वर्ग में रहने लगे।

भगवान् करे, हमारे भारत में ऐसे-ऐसे महात्मा फिर पैदा हों, जिससे हमारे देश की बड़ाई फिर चारो तरफ़ फैल जाय। और, सब लोग हमारा आदर करें।

बाल-विनोद-वाटिका की बढ़िया पुस्तकें

कीड़े-मकोड़े

लेखक, पं० भूपनारायण दीक्षित बी० ए०, एल्० टी० । चींटी, बर्र, टिड्डी आदि कीड़े-मकोड़ों का ऐसा सुंदर और रोचक वर्णन किया गया है कि पढ़ने में क़िस्से-कहानी से कहीं अधिक आनंद आता है । बालकों के योग्य इस विषय की अब तक कोई पुस्तक न थी । यह पुस्तक भी ६ हाफ़टोन और एक रंगीन चित्रों से अलंकृत है । मूल्य ॥=), सजिल्द १=)

खिलवाड़

लेखक, श्रीमती तुलसीदेवी दीक्षित । बालकों के पढ़ने-योग्य सरल कहानियों और कविताओं का अनूठा संग्रह । २० चित्र भी दिए गए हैं । मूल्य लगभग ।)

खेल-पचीसी

लेखक, श्रीप्रतिपालसिंहजी । इस पुस्तक में उन २५ खेलों का संग्रह किया गया है, जो लड़के साधारणतः खेलते हैं, या यों कहिए कि खेलते थे । अँगरेज़ी शिक्षा के फैलने से हमारे पुराने खेल दिन-दिन मिटते चले जा रहे हैं । शायद कुछ दिनों के बाद उन खेलों के जानकार भी न रहेंगे । हमने यहाँ ऐसे खेलों के खेलने की विधि बताई है, जिन्हें लड़के शौक़ से खेल सकें और खेल के साथ उनकी कुछ कसरत भी हो जाय । सचित्र । मूल्य ।=)

गधे की कहानी

पं० भूपनारायणजी दीक्षित ने यह 'गधे की कहानी' लिखकर बाल-

साहित्य के एक मुख्य अंग की पूर्ति की है। गधे ने अपनी कथा बड़े रोचक ढंग से कही है। भाषा ख़ूब सरल और मुहाविरेदार है। गधे ने अपनी भाषा में मानव-समाज पर कैसी हास्य-जनक आलोचनाएँ की हैं, यह देखने ही योग्य है। पुस्तक सचित्र है। मूल्य ॥), सजिल्द १)

नटखट पाँड़े

एक नटखट लड़के की आत्मकथा। आदि से अंत तक एक भी पृष्ठ ऐसा नहीं, जो नीरस और रूखा हो। एक-एक शब्द में हास्य रस भरा हुआ है। नटखट पाँड़े का विद्यारंभ, डॉक्टर महोदय की दुर्दशा, बोर्डिंग-हाउस के अध्यक्ष महोदय की दुर्गति, नटखट पाँड़े का रात को भाग जाना, गाने की मजलिस, सारी कहानी इतनी अनूठी और दिलचस्प है कि जिस लड़के ने किताब खोलने की क़सम खा ली हो, वह भी इसे समाप्त किए बिना नहीं रह सकता। कितने ही प्रसंग तो ऐसे हैं, जहाँ मारे हँसी के पेट में बल पड़ जायँगे। इसके लेखक भी वही पं० भूपनारायणजी दीक्षित हैं। पुस्तक में १४ तिरंगे और हाफ़टोन चित्र हैं, जिनसे उसकी सुंदरता और भी बढ़ गई है। मूल्य १॥), सजिल्द २)

परोपकारी हातिम

भारत में जैसे कर्ण और हरिश्चंद्र दान-वीर और वचन के सच्चे महात्मा हुए हैं, वैसे ही दानी और सत्यवादी पुरुष ईरान में हातिम हुआ है। उसकी कथा इतनी मनोरंजक है कि संसार की ऐसी कोई भाषा नहीं, जिसमें उसका अनुवाद न हो चुका हो। उसी हातिम का यह चरित्र बालकों के लिये बहुत ही सरल और सुबोध भाषा में लिखा गया है। कथा इतनी रोचक है कि अलफ़-लैला भी इसके सामने मात है! इसके साथ ही चरित्र पर उसका बहुत अच्छा असर पड़ता है मूल्य लगभग ॥)